॥ ओ३म् ॥

दृष्टांत सागर

❀ संग्रहकर्ता ❀

ठा० रतनसिंह वर्मा सिहोरा

प्रकाशक—हिन्दी पुस्तकालय,

मथुरा ।

प्रथमवार ४००० } सन् १९३७ { मूल्य १।)

प्रिंटर-
ला० गनेशीलाल गनेश प्रिंटिंग प्रेस,
हाथरस ।

❀ ईश्वर में विश्वास ❀

—(❀❀)—

एक बार एक ब्राह्मण अपनी ब्राह्मणी सहित मार्ग में चला जा रहा था। कुछ दूर पर उसे चार डाकू मिले और ब्राह्मणी पर आभूषण देख कर कपट से मधुर वचन कहने लगे कि, हे महाशय जी आपने कहां को प्रस्थान किया है ब्राह्मण ने अपने पहुंचने का निर्दिष्ट स्थान उनको बतला दिया। तब डाकू बोले कि, हे महाराज जी हमको भी वहीं पहुंचना है जहां पर कि, आपने आगमन किया है अस्तु हम और आप साथ ही साथ चलें तो बहुत अच्छा हो। यह सुन ब्राह्मण ने विचार किया कि, ("इकला चलिये न बाट,,) अस्तु यह सोच उनसे कहा कि चलिये हमारे लिये तो लाभ ही है क्योंकि आप इस मार्ग से पूर्ण परिचित होंगे और साथ २ मार्ग भी अच्छी भांतितय हो जायगा ऐसा कह कर ब्राह्मण, ब्राह्मणी और चारों डाकू साथ२ हो लिये।

आगे एक सघन वन में जाकर डाकुओं ने मार्ग को छोड़ कर एक पगडंडी पर पदार्पण किया। यह देख ब्राह्मण के हृदय में कुछ भय उत्पन्न हुआ और दोनों ठगों का साथ छोड़ खड़े हो गये तब चारों ठग ब्राह्मण से कहने लगे कि, महाशय जी आप हमारे साथ क्यों नहीं आते हो यदि हम आपके साथ में दुष्कर्म करें तो हमारे और आपके बीच में रमापति राम साक्षी हैं। इस सुन कर ब्राह्मण को विश्वास हो गया और वह डाकुओं के साथ चल दिया अब आगे जाकर जब झाड़ियों के मध्य में प्रवेश किये तब ठगों ने ब्राह्मण के मारने को तलवार निकाली।

यह कौतिक देख कर ब्राह्मण ब्राह्मणी कहने लगे कि हे ठगो जो तुमको लेना हो सो हमसे माँगो परन्तु हमारे प्राणों को न हरिये। यह सुन कर ठग बोले कि, हे ब्राह्मण हम बिना प्राण हरण किये किसी व्यक्ति का धन नहीं लेते यह हमारा आदि सनातन धर्म है।

यह सुनते ही महादीन ब्राह्मण ब्राह्मणी समेत रोने लगा और कहने लगा कि, हे चराचर के स्वामी, भक्तवत्सल, मर्यादा पुरुशोत्तम भगवान आपही हमारे और इनके मध्य में साक्षी थे। यदि आज आपने आकर न्याय न किया तो फिर आपको मर्याद पुरुषोत्तम, घटघट वासी, करुणानिधान, भुवनेश्वर, दया के समुद्र और कल्याणकारी कहना वृथा है। यदि आज न्याय न किया तो यह पृथ्वी रसातल को चली जायेगी। इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है।

ब्राह्मणो के इन वचनों को सुनकर विश्वास निवासी भगवान सुदर्शन चक्र धारण किये वहीं आ खड़े हुये और तुरन्त ही चारों डाकुओं को मार डाला और ब्राह्मणी, ब्राह्मण को दर्शन दे भगवान अन्तरध्यान हुये। इस लिये इस कथा से यह शिक्षा मिली कि भगवान पर विश्वास रख कर कठिन से कठिन कार्य भी सिद्धि होता है। इस विषय में एक कवि ने लिखा है।

दोहा—जो जन आये हरि निकट, धरि मन में विश्वास।
कोई न खाली फिर गयौ, पूरि लियौ निज आस॥
बिन विश्वास भगति नहीं, तेहि बिन द्रवहिं न राम।

राम कृपा बिन सपनेंहु, जीव न लौह विश्राम ॥

दृष्टान्त नं० २ सतोगुणी गुरू की खोज ।

एक राजा इस चिंता में कि मैं ऐसे महात्मा को गुरू बनाऊं जो सतोगुणी हो । उसने संसार में भ्रमण किया परंतु रजोगुण और तमोगुण के रहित उसे कोई महात्मा न मिला, तब वह एक दिन श्री काशी जी में गया और वहाँ पर एक महात्मा से भेंट हुई जो श्री गङ्गाजी में स्नान करके आरहा था । और उसके शिर पर जल का घड़ा रक्खा हुआ था । राजा ने महात्मा से प्रणाम कर कहा कि हे तपेश्वरी मैं आपसे एक प्रश्न करना चाहता हूं तब महात्मा ने प्रसन्न होकर राजा से कहा कि बच्चा पूछो ! तब राजा ने कहा कि महाराज मैं तो उस प्रश्न को भूल गया । जाने मैं क्या कहना चाहता था । आपके आसन तक याद करके कहूंगा । महात्मा जी खुश होकर वहाँ से चल दिये, जब सीढ़ियों पर चढ़ गये तब राजा बोला कि, महाराज अब वह प्रश्न याद आ गया । महात्माजी ने कहा कि, बच्चा पूछो । फिर राजा ने कह दिया कि मैं तो महाराज फिर भूल गया । परन्तु महात्मा जी अप्रसन्न न हुये ।

राजा ने इसी प्रकार कई बार महात्मा से धोका दिया परन्तु उस सतोगुणी महात्मा के मुख पर तमोगुण नाम तक न आया । फिर राजा ने महात्मा के आसन पर बैठ कर कहा कि

बाबा इस समय वह प्रश्न याद आगया। महात्माजी ने फिर पहिले की तरह कह दिया कि, बच्चा कहो।

तब राजा ने महात्मा जी से कहा कि, महाराज मिष्टा क्या वस्तु होती है। महात्माजी यह बात सुन कर बहुत हंसे और कहा कि, बच्चा इस पर मक्खी बैठती है।

राजा ने . हात्मा को पूर्ण सतोगुणी देखकर कि इतने पर भी इनके वदन पर क्रोध नहीं छाया है वार्तालाप किया, कि मुझे अपना शिष्य बनाइये। मैं अभीतक ऐसे ही गुरु की खोज में था।

महात्माजी ने शिष्य बनाने से इनकार किया कि शिष्य के बुरे कर्मों का फल गुरु को भोगना पड़ता है। दूसरे जन्म में जाकर गुरू पीपल और शिष्य चैंटा बनता है जो उसी गुरू पीपलको खाता है। इस कारण से मैं किसी को शिष्य बनाना नहीं चाहता हूं। राजा यह वचन सुनकर चरणों पर गिर पड़ा। महात्मा उसके प्रेम को देखकर बहुत प्रसन्न हुये और उसे अपना शिष्य बनालिय

ॐ तत्वार्थ ॐ

इस कथा से यह सार निकला कि गुरु शील स्वाभावी, सदाचारी बनाना चाहिये क्योंकि अच्छे गुरु की संगति का प्रभाव अवश्य पड़ता है।

किसी कवि ने कहा है:—

गुरु कीजै जानकर, पानी पीजै छानकर।

दोहा—साधू ऐसा चाहिये, जैसा सूप स्वभाव।
सार सार को गहि रहै, थोथा देइ उड़ाय॥

दृष्टान्त नम्बर ३ सतोगुणी महात्मा

जब राजा युधिष्टिरने यज्ञ कियातो सब महात्मा आये परन्तु एक महात्मा नहीं आया। तब राजा युधिष्टिरने उनके पास जाय दंडवत प्रणाम करके कहा कि हे मुनीश्वर आप मेरे साथ चलकर भवनको सुशोभित कीजिये। महात्माने इनकार किया परन्तु राजा केबहुत कहनें सुनने पर महात्मा ने कहा कि यदि सौ यज्ञों का फल मुझे दे तो मैं तेरे साथ चल सकता हूं वरना नहीं। राजा युधिष्ठिर यह ख्याल कर लौट आये कि मैंने तो पहिली यज्ञ आरम्भ की है, मैं सौ यज्ञों का फल कहां से दूंगा। यही वृतान्त उन्होंने आकर अपने छोटे भाइयों को सुनाया। तब अर्जुन ,भीम, नकुल और सहदेव बारी बारी से उस महात्मा के पास गये, परन्तु महात्मा ने सबसे यही एक प्रश्न किया। अन्त में सब लौट आये।

द्रोपती ने उस समय कहा कि हे प्राण नाथ यदि आप मुझे आज्ञा दें तो मैं उन महात्माजीको ला सकती हूं। युधिष्ठिर ने यह सुनकर आज्ञा दी और द्रोपदी भी उस साधु जी के पास गई और द्रोपती से भी उसने यही प्रश्न किया।

द्रोपती यह सुनकर बोली कि, हे मुनीश्वर मैं आपको सौ क्या १०१ यज्ञों का फल दूंगी। तब महात्मा ने कहाअच्छा लाओ, तब द्रोपती बोली कि—

दोहा—संत दरश को चालिये, तजि माया अभिमान।
ज्यों ज्यों पग आगे धरो, त्यों त्यों यज्ञ समान॥

इस बात को सुनकर महात्मा बहुत प्रसन्न हुये और महात्माजी द्रोपती के साथ यज्ञ को आये ।

। नम्बर ४ आज कल के श्रोता ।

एक ब्राह्मण के मकान पर कथा हुआ करती थी, वहीं पर एक बजाज कथा सुनने के लिये गये और कथावाचक को नमस्कार कर आगे बैठ गये और सुनतेही सुनते आप सोगये ।

तब आप स्वप्न में क्या देखते हैं कि वे अपनी दुकान पर बैठे हुये हैं और ग्राहकों को कपडा दे रहे हैं अंत में आप बोले कि चार ही आने गज ले लो हमको तो बेचना ही है निदान पंडित जी का जो अंगरखा था उसका छोर सोते समय हाथ में आगया चट उसको फाड़ डाला ।

सब लोग बोले यह क्या किया लाला बहुत लज्जित हुये अस्तु ऐसे सुनने से निस्तार नहीं होता कि मन घर के कार्यों में लगा है और बैठे था में हैं इससे मन लगाकर कथा सुननी चाहिये । किसी कवि ने लिखा हैं:—

❀ चौपाई ❀

भगवत कथा सुमंगल दानीं, अघ जवास जिमि पावस पानी
श्रोता अमियत कल्प लतासी, महा मोह तम भानु प्रकाशी

॥ नम्बर ५ नीति की शिक्षा ॥

एक दिन कुछ मनुष्य बन में बादशाह नौशेरवाँ के साथ आखेट खेलते खेलते बहुत दूर निकल गये वहां उन्हें

कुछ भूख सी मालूम हुई और उन्हों ने कबाब बनाने की ठानी मगर उस समय वहां पर नमक न था। उन्होंने पास ही के एक गांव में अपने एक नौकर को भेजा और कहा कि देखो दाम दे देना क्यों कि ऐसी बुरी बान पड़ने से गांव का नाश होजायगा। तब नौकर ने कहा, हे स्वामी इतनी छोटी बात पर गांव का नाश कैसे हो सकता है। तब बादशाह ने उत्तर दिया :—

खाय प्रजा के बाग से एक सेव जो राय।
सेवकवाके दास तब रूखहि देहि गिराय।
इक अण्डे के हित करै राजा अत्याचार॥
तो फिरि वाके लश्करी मारें मुर्ग हजार।

❀ समाप्ति ❀

नम्बर ६ दुष्ट के उपाय और उपदेश से साधू भी डिग जाते हैं।

एक बन में मदोत्कट नाम का सिंह रहता था। उसके तीन सेवक- तेंदुआ, काग और स्यार थे। एक दिन उस बनमें एक ऊंट आनिकला। उसको देखकर उन तीनों सेवकों ने उसे पकड़ लिया। और उसे पकड़ कर सिंह के पास लेगये। सिंह ने उसको जीवदान दिया और उसका नाम चित्रकरन रख दिया।

उस दिन से ऊंट भी उनके साथ रहने लगा। एक बार बर्सात के मौसम में लगातार तीन दिन तक मेंह बरसा। और

उनको खाने के लिये न मिला, तब तीनों ने परस्पर सलाह की कि कोई ऐसा यत्न करना चाहिये कि सिंह ऊंट को मारै और हमको खाना मिले। उस वक्त तेंदुआ बोला कि "इसको तो सिंह ने जीवनदान दे दिया है, वह इसको कैसे मारेगा तब काग बोला कि भूख सब कुछ करा लेती है, समय पाकर राजा भी पाप करता है।

जैसे भूखी नागिन अपने अण्डा खाती है। और यह भी कहा है कि " १–व्यभिचारी २–रोगी असावधान ३–वृद्ध, ४–अधीर, ५– क्रोधी लोभी ६ भूखा ये धर्म को जानते हैं मानते हैं।

इस तरह से सलाह करके सिंह के पास गये। और अहार न मिलने का वृतान्त कहा।

काग बोला "इस ऊंट का मार खाओ।" तब सिंह बोला कि "मैंने तो इसे अभयदान दे दिया है फिर मैं कैसे मारूं। तब काग ने छल कपट से यह ऊंट द्वारा कहलवा लिया कि आप मुझे मार कर अपनी क्षुधा शाँति कीजिये क्योंकि सेवक का कर्म यही है कि–

भानु पीठ राखिय उर आगी। सेवै स्वामि सकल छल त्यागी ॥

सिंह ने सुनकर उसको मार दिया और उसे कर लिया।

॥ तत्वार्थ ॥

इससे यह सिद्धि होता है कि दुष्टों के उपदेश से साधू भी डिग जाते हैं, जैसे कुटि ? भौं के साथ नेत्रों को भी वक्र होना पड़ता है।

। ७ दृष्टान्त ॥ तपसे भी बड़ा सत्सङ्ग है ॥

एक वार मुनि विश्वामित्र और वशिष्ठ में वाद विवाद हुआ। विश्वामित्र कहते थे कि तप बड़ा है और वशिष्ठ जी कहते थे कि सत्सङ्ग बड़ा है। वाद तर्क वितर्क के दोनों शेष जी के पास गये। और सारा वृतान्त कह सुनाया।

शेषजी ने कहा कि तुम मेरे महिभार को धारण करो मैं न्याय करूं। तव विश्वामित्र जी ने सारा तपस्या का वल लगा दिया परंतु वे महि के भार को न उठासके तव फिर वशिष्ठ जी ने थोड़े से सत्सङ्ग के वल से पृथ्वी को उठा लिया और अंत में विश्वामित्र को शरमिंदा होनापड़ा।

॥ तत्वार्थ ॥

सत्सङ्गति की महिमा छिपी हुई नहीं है। सत्सङ्गति क हीप्रभाव से नारद तथा घटयोनि और व्यास जीने महर्षि पद प्राप्त किया। सत्सङ्गति का ऐसा प्रभाव है कि दुष्ट आदमी भी एक पूर्ण विद्वान वन सकता है।

८—देहाती पंचायतन ॥

एक काश्तकार के तीन पुत्र थे और वह काश्तकार धनाढ्य भी था जव वह मर गया तो कह गया कि मेरे माल को वड़ा और मंझला वेटा वरावर वरावर वांटैं परंतु छोटे भाई ने कहा कि मुझे इसका हिस्सा क्यों नहीं मिलेगा इसका मुख्य

कारण बताओ। वाद तर्क वितर्क के इस झगड़े का निर्णय सामाजिक पंचायतन में होने लगा। पांच पंचों ने परस्पर मिलकर दीवार पर एक शक्ल बनाई और काश्तकार के बड़े पुत्र से कहा कि यह शक्ल तुम्हारे पिता की है तुम इसमें पांच जूता दो सारा धन तुमको मिल जायगा तब बडे पुत्र ने कहा कि पिता की सेवा का फल ही बड़कपन से भरा हुआ हमारा परम धन है चाहे प्राण चले जांय परन्तु धर्म को नहीं त्याग सकता हूं।

फिर उसको अलग करके पंचों ने मकान के अन्दर मझले पुत्र को बुलाया और उससे भी वही प्रश्न किया परन्तु उसने उत्तर दिया कि धर्म त्याग कर के मुझको यह चलायमान धन अच्छा नहीं लगता इसी प्रकार तीसरे पुत्र से भी यही कहा गया उस बुद्धि हीन ने धन के लालच में पड़ कर कृतिम पिता की प्रतिमा में पाँच जूते मारे। अन्त में फिर पंचों ने कहा कि बड़ा बेटा और मझला बेटा सुपुत्र हैं उस कारण धन के अधिकारी हैं और छोटा पुत्र बुद्धिहीन कुपुत्र है इसलिये यह धन का अधिकारी नहीं है यह न्याय सबको प्रिय लगा तुलसीदास जी ने कहा है कि—

दोहा—मात पिता गुरु स्वामि सिख, शिर धर करहिं सुभाय।
लहेउ लाभ तिन जन्म के, नतरु जन्म जग जाय॥

नम्बर ९ काजी का इन्साफ ॥

किसी गांव में एक काश्तकार अति धनाडि था। उसके

तीन पुत्र थे जब वह मर गया तो वह अपने पुत्रों से कह गयाकि सारे धन धान्य को तीनों भाई बराबर बराबर बाँट लेना परन्तु घोड़ों का हिस्सा इस तरह करना कि कुल का आधा बड़े को कुल का तीसरा हिस्सा मंझले को और नवा हिस्सा छोटे बेटे को मिले।

उसके मरने के पश्चात तीनों भाइयों ने सारा धन बराबर किया परन्तु १७ घोड़े बाकी रहे। अब बांट करने में झगड़ा होने लगा अन्त में काज़ी के पास गये दूसरे दिन काज़ी साहब आये और कहा कि "यदि तुमको अपने हिस्सा का कुछ अधिक मिल जाये तो प्रसन्न हो ग्रहण करोगे।

तीनों ने स्वीकार किया। फिर काजी साहब ने उन सत्रह घोड़ों में एक अपना घोड़ा मिलाकर अठारह कर दिये और कुल का आधा अर्थात् ९ घोड़े बड़े लड़के को दिये और कहा कि "तुम्हारे हिस्से से ज्यादा है फिर कुल का तीसरा भाग यानी ६ घोड़े मंझले बेटे को दिये और कुल का नवां भाग अर्थात् २ घोड़े छोटे बेटे को मिल गये।

इस प्रकार सत्रह घोड़े बाँट दिये और अठारहवा अपना घोड़ा अपने लिये बच रहा यह देखकर सम्पूर्ण नगर निवासी काजी के न्याय की बड़ाई करने लगे।

१०— चन्द्रगुप्त की बुद्धिमानी ॥

किसी कवि का लेख है कि एक बार रूम के बादशाह ने राजा महानन्द के पास एक बनावटी शेर लोहे की जाली के

पिंजडे में रखकर भेजा और शर्त यह थी कि पिंजड़ा तो टूटे नहीं परन्तु शेर निकल जाये।

इसके निकालने की महानन्द तथा उसके आठ पुत्रों ने महान कोशिश की परन्तु बुद्धि ने काम नहीं दिया और उसका कुछ फल न निकला।

इसके पश्चात चन्द्रगुप्त मौर्य ने विचार किया कि यह सिंह किसी ऐसे पदार्थ का बना है जो सर्द या उष्णता से गल जाये।

तब उसने पिंजडे को जल कुण्ड में रख दिया परंतु वह न गला फिर दुबारा उसने चारों ओर अग्नि जलाई। उसकी गर्मी से वह सिंह गल कर बाहर निकल गया और चंद्रगुप्त मौर्य की बुद्धिमानी प्रकाशित होगई।

११—चन्द्रगुप्त की बुद्धिमानी।

एक बार उक्त लेखानुसार एक बादशाह ने राजा महानंद के पास एक अंगीठी में सिलगती हुई अग्नि भेजी और साथ ही साथ एक बोरा सरसों और एक मधुर फल भेजा परंतु महानंद के यहां उसके अर्थ को कोई न जानसका तब दासी पुत्र चंद्रगुप्त ने उस पर निर्णय किया और सबको समझाया कि यह अंगीठी दहकती हुई बादशाह के क्रोध को स्पष्ट जाहिर करती है और एक बोरा सरसों इस कारण भेजी है कि मेरी सेना असंख्य है और फल भेजने का भावार्थ यह है कि मेरी मित्रता का फल मधुर है।

चन्द्रगुप्त ने इसके प्रत्युत्तर में एक घड़ा जल, एक पिंजड़ा में कुछ तीतर और एक अमूल्य रत्न भेजा उसका आशय यह था कि तुम्हारी क्रोध रूपी अग्नि को बुझाने के लिये हमारी जल रूपी नीति है, तुम्हारी असंख्य सेना को भक्षण करने के लिये हमारे तीतर रूपी योद्धा हैं और हमारी मित्रता के फल को अमूल्य रत्न जाहिर करता है। कि वह सदैव एक रस और मधुर है।

॥ भावार्थ ॥

इस तरह चन्द्रगुप्त की बुद्धिमानी जगत में जाहिर है।

१२—कंजूस मनुष्य की कहानी।

एक किसान एक दिन नारियल लेने के वास्ते शहर में गया और बाजार में जाकर दूकानदारसे पूछा कि सेठि जी एक नारियल के कितने दाम हैं। दूकानदार ने एक नारियल की कीमत दो आने बतलाई। जब किसान ने कहा "छै पैसे नहीं ले सकते हो"। तब दूकानदार बोला कि "आगे सस्ता मिलेगा फिर वह किसान नारियल के वास्ते आगे को दूकानों पर बढ़ा और दूकानदारों से पूछा" कि एक नारियल की क्या कीमत है"। उसने छै पैसे मांगे।

तब किसान ने कहा चार पैसे ले लीजिये। दूकानदार ने कहा आगे मिल जायेंगे। वहां क्या था लोभ की चेष्टा में आगे नारियल का भाव चार पैसे मिला। तो किसान बोल

दो पैसे नहीं ले सकते हो।

ज्यों ज्यों वह आगे बढ़ा उसका लोभ भी बढ़ता ही गया। इतने में उसको आगे नारियल का वृक्ष दिखाई पडा। वह लोभ में आकर उस वृक्ष के पास गया। उस पेड़ के पास ही एक कुआ था। ज्यों ही उसने नारियल पकड कर झटका दिया त्यों ही वह नारियल सहित कुए में गिर पडा। और वह मर गया।

॥ भावार्थ ॥

इससे यह सार निकला कि लालच कभी नहीं करना चाहिये।

तुलसी दास जी ने भी इसकी बाबत कहा है—

काम क्रोध मद लोभ की, जब लगि मनमें खान।
तब लगि पंडित मूरखौ, तुलसी एक समान॥

॥ नं० १२ लोभ की नाव डूबती है ॥

एक तालाब के किनारे एक मेंढक पडा हुआ था। वहां पर एक कौवा आया और उस मेंढक को उठाले गया। वहां से उडकर वह एक नीब के पेड पर जा बैठा।

मेंढक ने कहा कि लोभ की नाव डूबती है। इस बात को तुम याद रखना।

यह सुन कर कौवे ने कहा मैं अब तुमको खाता हूं तब मेंढक ने कहा" नीचे कुए पर डलो क्यों कि मैं उसमें गोता लगा लूंगा जिससे बदन की मिट्टी धुल जायेगी और तुम

अपनी चोंच को पत्थर से पैना लो ताकि तुम बहुत ही जल्दी खा सकोगे । मेरे उदर के अन्दर एक अमृत की थैली है । जिसको पाकर आप अमर होजाओगे । परन्तु जब तक मेरे बदन से मिट्टी नहीं घुलेगी तब तक वह थैली आपको नहीं मिल सकती ।

कौवे को य बात पसन्द आगई और मेंडक को कुप पर छोड़ दिया और आप पत्थर पर चोंच घिसने लग गया इतने में मेंढक पानी में चलता गया और मेंढक ने कौवे से कहा कि "हमने तुमसे पहिले ही कहा था कि लोभ की नाव डूबती है परन्तु तुमने कोई ध्यान न दिया कौवा लज्जित हो वहां से उड़गया ।

नं० १४ अजीब इन्साफ़ ।

किसी गांव दो मनुष्यों में झगड़ा हुआ एक का नाम धनपतिराय और दूसरे का नाम बुद्धिसागर था ।

धनपतिराय कहता था कि "धन बड़ा है और धन ही के प्रताप से बुद्धि होती है और धन ही से बहुत से काम सहज ही में सिद्ध होजाते हैं परन्तु बुद्धिसागर कहता था कि बुद्धि बड़ी है । और मनुष्य की सर्वस्व सम्पति बुद्धि ही है । धन को चोर लेजाता है और वह नष्ट भ्रष्ट भी होजाता है ।

परन्तु बुद्धि को न चोर ले सकता है और न कोई बाँट सकता है न राजा छीन सकता है और मनुष्य बुद्धि के प्रताप से इस प्रकार संसार से पार हो सकता है अर्थात जो भगवान अज अविनाशी अलख अगोचर हैं वे सहज में ही बुद्धि के द्वारा पास आकर मिल सकते हैं परन्तु धन से भगवान नहीं मिल सकते। बाद तर्क वितर्क के यह झगड़ा राजा के पास गया। राजा ने कोधित हो कर कहा कि "फलां देश का राजा तुम्हारा इन्साफ करेगा। तुम हमारे पत्र को लेकर वहां जाओ।"

राजा ने समाचार पत्र में अपने मित्र राजा को लिखा कि आप इन दोनों मनुष्यों को आते ही फांसी लगवा देना और पत्र को लेकर दोनों मनुष्य गये और राजा को प्रणाम करके वह समाचार पत्र राजा को दिया।

राजा ने अपने मित्र राजा का पत्र पढ़कर विचार किया कि इसमें ऐसा कोई कारण अवश्य है कि अपने यहाँ फांसी न देकर हमारे देश में यह अपराधी भेजे हैं। शायद उनके देश में फांसी न दी जाती हो इसी कारण इन अपराधियों को हमारे यहां भेजा है। ऐसा निर्णय करके उनको हुक्म दिया कि फलां तारीख को तुम्हारी फांसी होगी। यह कह कर उनको हवालात में बन्द कर दिया अब धनपतिराय जी फूट फूट कर रोने लगे। बुद्धिसागर ने अत्यन्त समझाया कि भाई! साहब जी रोने से प्राणदान नहीं मिल सकता इस लिये रोना छोड़ कर खूब हंसा

इसके पश्चात में आपसे पूछूंगा कि "कहदूं तो आप हंसकर कह देना कि कदाचित नहीं। इस प्रयत्न से तो प्राण दान मिल भी सकता है वरना और कोई उपाय ऐसा नहीं जिसमें कि प्राण बचजाय। धनपतिराय ने बुद्धिसागर की बात मानली और रोने को छोड़कर खूब हंसने लगे।

बुद्धिसागर ने कहा कि "कह दूं तब धनपतिराय बोले कि कदापि नहीं, जो कोई उनके पास आता तो वे इसी प्रकार हंसते थे। जब इस प्रकार उनको हंसता देखा तो उन्होंने यह वृतान्त राजा के पास पहुंचाया। राजा ने अपने सचिव को उनके पास भेजा। मंत्री भी उनके पास आए तो उन्होंने मंत्री के सामने भी ऐसा ही कहा। मंत्री जी अचंभित होकर राजा के पास गए और सारा वृतान्त कह सुनाया कि हे श्री महाराज इसमें कोई कारण छिपा हुआ अवश्य है कि रंज के समय खुशी इसके वदन पर छाई हुई है। यह समाचार सारे नगर में फैल गया कि फलाँ देश के दो अपराधी फांसी लगने को यहां पर आए हैं और खूब हंसते हैं। राजा ने विचार करके उनको दरबार में बुलाया। सारे कर्मचारी और नगर निवासी एकत्रित हुये और उन दोनों को वहां पर बुलाया गया तब वे सभा में खूब हंसे और बुद्धिसागर बोला "कह दूं" तो धनपतिराय ने कहा "कदापि नहीं"। राजा ने अचंभित हो कर उनसे बहुत कुछ पूछा तब बुद्धिसागर ने कहा "कह दूं" और धनपतिराय ने "कदापि नहीं" यह सुनकर राजा ने

इनसे बहुत पूछा तब बुद्धिसागर बोला कि महाराज बताने में हमारे महाराज की हानि है परन्तु राजा के एक बार कहने से बुद्धिसागर ने कहा "कि हे नाथ ! हमारे राजा से एक महात्मा ने कहा है कि जिस राज्य में तुम अपने अपराधियों को फांसी लगवाओगे वही राज्य तुम्हारा हो जावेगा। इस कारण हम यहां पर भेजे हैं। राजा ने प्रसन्न होकर कहा कि इनको दो लाख रुपये देकर देश से निकाल दो ,, दोनों रुपये लेकर भाग गये। धनपतिराय बहुत खुश हुआ और दोनों अपने राजा के पास आये।

राजा ने कहा कि "तुम्हारा न्याय हो गया ,, तब भी यह बुद्धिहीन धनपतिराय बोला "महाराज इन्साफ क्या वहां तो जान के लाले पड़ गये और जैसे तैसे जान बचाई है। ,,

यह सारा वृत्तान्त सुनकर राजा ने क्रोधित हो धनपति राय को खूब पीटा और न्याय समझा दिया, और अन्त में दोनों अपने २ घर आये।

इससे सिद्ध हुआ कि बुद्धि के आगे धन की कुछ नहीं चलती।

भावार्थ—

धन सांसारिक सुखों में मुख्य है परन्तु बुद्धि सांसारिक सुखों के लिए तथा पारलौकिक सुखों के लिये प्रधान है।

इससे सिद्ध हुआ कि धन से बुद्धि बड़ी है।

नं० १५ एक क्षत्राणी का पतिव्रत धर्म ।

बूंदी नरेश महाराज यशवन्तसिंह जी शाही दरबार में रहते थे एक दिन बादशाह ने अपनी सभा में प्रश्न किया कि आज कल वह जमाना वर्त रहा है कि स्त्री भी दुराचारिणी हो गई हैं। पतिव्रत धर्म को ग्रहण करने वाली स्त्री पृथ्वी पर न हैं और न होंगी क्योंकि समय बड़ा बलवान है। यह सुन कर सारे सभासद चुप हो गये परन्तु वीर क्षत्री बूंदी नरेश पर न रहा गया और क्रोध पूर्वक सभा में खड़े हो कर बोले कि हे बादशाह आगे की तो मैं कह नहीं सकता हूं वरना इस वक्त तो मेरी स्त्री पूर्ण पतिव्रत धर्म को ग्रहण करने वाली है। यह सुन कर बादशाह चुप हो गये परन्तु एक शेरखां नामी मुसलमान बोला कि आपकी स्त्री पतिव्रता नहीं है। बाद तर्क वितर्क के यह निश्चय हुआ कि एक माह की मुहलत में मैं आपको जसवन्तसिंह की पत्नी का पतिव्रत धर्म दिखला दूंगा।

इस पर बादशाह ने कहा कि दोनों में से जो झूंठ निकलेगा उसी को फांसी लगवा दी जावेगी और दूसरे को इनाम मिलेगा।

शेरखां यह सुन कर बहुत खुश हुआ। और अपने नगर में आकर दो दूती बुलाई और दोनों से पूछा कि तुम क्या क्या काम कर सकती हो। तब एक ने कहा कि मैं बादल फाड़ सकती हूं और दूसरी ने कहा कि मैं बादल फाड़ कर

सी सकती हूं । यह सुन कर शेरखां ने दूसरी दूती को पसन्द किया । और उससे कहा कि बूंदी नरेश की पत्नी पतिव्रता है इस कारण तू उसके पतिव्रत धर्म को छल से डिगादे तो मैं तुम्हें पाँच गांव इनाम दूं दूती इस बात को सुन कर प्रसन्न हो गई ।

एक डोला उसने तय्यार कराया और उसमें बैठ कर बूंदी को प्रस्थान किया । जब वह बूंदी नरेश के यहां पहुंची तो उस बूंदी नरेश की पतिव्रता नारी ने उसका आदर सत्कार किया ।

क्योंकि वह बूंदी नरेश की भूआ बनकर गई थी और रानी ने उसे कभी देखा न था इसलिये उस दूती को रानी ने महाराज जी की भूआ ही समझा ।

दो दिन पश्चात रानी से दूती ने कहा "कि चलो स्नान करलें ।" रानी ने कहा " भूआ जी मैं पीछे स्नान करूंगी । आप स्नान कर लीजिए ।

दूती यह सुनकर क्रोधित हुई और बनावटी भय दिखलाने लगी कि मैं जसवन्तसिंह से तेरी शिकायत करूंगी । उस बेचारी को भय मालूम हुआ क्योंकि रानी उसको जानती नहीं थी, इस कारण विश्वास करके उसके सामने स्नान करने लगी तो उस दूती ने उसके अंग को देखा तो रानी की जंघा पर लहसन दिखाई दिया , स्नान करने के पश्चात दूती ने भोजन किया । अन्त में दूसरे दिन दूती ने कहा कि अब तो मैं जाती हूं और वहां पर एक रखी हुई कटार को देख कर उसे मांगने लगी ।

रानी ने हाथ जोड़ कर कहा कि हे भूआ जी यह तो कटार मेरे पतिव्रत धर्म की है। महाराज जी ने मुझको दे रखी है। दूती ने कटार को बार बार मांगा परन्तु रानी ने कटार न दी।

अन्त में दूती ने क्रोधित हो कर कहा कि मैं तुझे जसवन्तसिंह से कह कर निकलवा दूंगी। तब तू अपने धर्म की किस प्रकार रक्षा करेगी। तू ने मेरा इस छोटी सी कटार पर इस तरह अनादर किया। रानी ने उसके क्रोध से भयभीत हो कर कटार को दे दिया। दूती प्रसन्न होकर वहां से चल दी और शेरखां को आकर दोनों निशान दिये। और वह इनाम जो कि पांच गांव राजा ने रखे थे इनके लेने के लिए शेरखां शाही दरबार में गया और दोनों चिन्ह बादशाह के आगे रखे। और कहा कि शाह जी मैं इस कटार को लेकर और लहसन का निशान देख कर अभी चला आरहा हूं। जसवन्तसिंह ने इस बात को सुनकर अचम्भा किया। अन्त में जसवन्तसिंह को फांसी का हुक्म होगया और शेरखां को इनाम मिला।

दूसरे दिन जसवन्तसिंह घोड़े पर सवार होकर बूंदी में आए। रानी महाराज का आगमन सुनकर दरवाजे पर गंगाजल लेकर आई परन्तु जसवन्तसिंह उसकी मूर्ति देख कर लौट आये। रानी ने अपने पति को क्रोधित जान कर शोक किया कि हे दैव मैंने ऐसा क्या दुष्कर्म किया जिससे महाराज मुझसे कुछ भी न कहकर लौट गए। अन्त में इस पतिव्रत

नारी को सारा वृतान्त मालूम हुआ तब वह क्रोधित होकर अपनी पांच सहेलियों के साथ दिल्ली को गई और नाचना आरम्भ किया। नाचते नाचते शाही दरबार में गई और बादशाह को नाच दिखाकर गाना इस तरह सुनाया कि बादशाह सुनकर प्रसन्न होगया।

वह ईश्वर प्रार्थना जो कि रानी ने गाई थी बादशाह अपने ऊपर वर्णित करके बहुत प्रसन्न हुआ और कहा कि तुम्हारी जो कुछ इच्छा हो सो मांगो। रानी ने त्रिवाचा भरवा कर कहा कि हे बादशाह! शेरखां पर मेरा ५००) कर्जा है सो आप उनसे दिलवा दीजिए।

बादशाह ने शेरखां को रुपयों की बाबत पूछा तो वह रानी के मुंह को तक कर बोला कि मैं खुदा की कसम खाता हूं कि मैंने तो इसका कभी मुंह तलक भी नहीं देखा है मुझ पर इसका कर्जा क्योंकर है। रानी ने यह सुनकर बादशाह से कहा कि यदि मेरा मुख भी नहीं देखा था तो यह कटार और लहसन का निशान तूने किस तरह बतला दिया। यह सुनकर शेरखां के होश उड़ गए और जसवन्तसिंह के बजाय शेरखां को फांसी का दण्ड मिला क्योंकि रानी ने बादशाह से दूती का सब हाल बयान कर दिया था।

भावार्थ—

इससे यह शिक्षा मिली कि पतिव्रत धर्म के प्रताप से सारे कठिन से कठिन काम तुच्छ दिखाई देते हैं।

विन्दा पतिव्रत धर्म के ही कारण तुलसी बनकर भगवान की प्राणप्यारी बनी क्योंकि इसके विना भगवान छप्पन भोगों को भी नहीं मानते। सीता जी ने भी राम से कहा है कि-

॥ चौपाई ॥

मातु पिता भगनि प्रिय भाई। प्रिय परिवार सुहृद सुखदाई॥
सासु श्वसुर गुरु सजन सहाई। सुत सुन्दर सुशील सुखदाई॥
जहं लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय विन तियहि तरनि ते ताते।
जिय विन देह नदी विन वारी। तैसहि नाथ पुरुष विन नारी॥

इसलिये यह सारांश निकला कि स्त्री के लिए पति ही सर्वस्व है।

नं० १६ महात्मा जैमिन

एक दिन व्यास जी महाराज ने जैमिन को समझाया कि-

विषया विनिवर्तन्ते निरा हारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥ ५६॥
यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणी प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥

अर्थ—यद्यपि इन्द्रियों के द्वारा विषयों को न ग्रहण करने वाले पुरुष के भी केवल विषय तो निवृत्त हो जाते हैं परन्तु राग नहीं निवृत होता और यत्न करते हुये बुद्धिमान पुरुष के भी मन को यह प्रमथन स्वभाव वाली इन्द्रियाँ बलात्कार हर लेती हैं परन्तु जैमिन ने इस बात को न माना। व्यास

जी ने बहुत समझाया परन्तु जैमिन की समझ में न आया अन्त में व्यास जी ने कहा कि "फिर कभी इसको समझावेंगे यह कह कर वे चल दिये।

सन्ध्या समय कुछ बादल हो गए और बूंद पड़ने लगीं तूफान भी आया। उसी वक्त व्यास जी ने माया की दस ग्यारह नव युवक स्त्रियां प्रकट कीं और उनके पीछे आपने भी महान सुन्दर स्त्री का रूप धारण करके जैमिन अपने शिष्य के आश्रम की तरफ आगमन किया। हवा के झोकों द्वारा महीन वस्त्र उजड़ पुजड़ जाने से उनके अंग जैमिन की नजर पड़े। अन्त में वे आगे गेंद खेलती हुई चली गईं इसके पश्चात व्यास जी स्त्री का रूप बनाये हुये आये और बोले कि हे महाराज हमारी दश ग्यारह सहेलियां बिछुड़ गई हैं और रात्रि हो गई है इस कारण में आपके आश्रम में रहना चाहती हूं। जैमिन ने बहुत मना किया परन्तु उसने कहा कि मेरा धर्म बिगड़ने का पाप या किसी जानवर द्वारा खा लेने से स्त्री हत्या का पाप तुमको लगेगा।

जैमिन ने सोच समझ कर उसको एक कोठरी बतला दी।

और अपने मन को बस में करने का प्रयत्न करने लगे फिर उससे बोले कि यहां पर जैमिन नाम का एक भूत आता है इस कारण तुम मेरा नाम लेने पर भी किवाड़ न खोलना।

व्यास जी अपना असली रूप बना कर भीतर भजन करने लग गये। जब रात्रि में जैमिन को उन दस ग्यारह

स्त्रियों की याद आई तो विषय वासना की लाल
और दरवाजे पर जा कर बोले कि हे प्रिये मैं
ही धोखा दिया था, यहां पर कोई भूत नहीं आ...
खोल दीजिये परन्तु उन्होंने किवाड़ न खोली अन्त में इन्द्रियों
ने विषया लवलीन होकर मन को वस में कर लिया और
जैमिन छत काट कर उसमें कूद पड़े ।

वहां देखते हैं कि व्यास जी महाराज विराजमान हैं।
व्यास जी ने क्रोधित होकर दो तमाचे जैमिन में दिये और
कहा कि—

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपाश्चत. ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभ मन. ॥

अर्थात इन्द्रिया विषया लवलीन होकर बुद्धिमान पुरुष
के मन को बलात्कार हर सकती हैं या नहीं जैमिन हाथ जोड़कर
चरणों में गिर पड़ा और क्षमा मांगने लगा ।

॥ नम्बर १७ होनहार बालक ॥

गुरु द्रोणाचार्य के पास बहुत से राजकुमार पढ़ते थे ।
युधिष्ठिर उन सब में बड़े थे । उनकी पहिली पुस्तक का पहिला पाठ
था कि "मनुष्य को क्रोध त्याग देना चाहिये" । क्योंकि क्रोध
के समान कोई दुष्ट नहीं जो कि स्वयं अपनो हृदय माता को
भक्षण कर जाता है । युधिष्ठिर ने इस वाक्य को अटल कर

लिया। चाहे प्राण चले जाँय परन्तु क्रोध न करूंगा और जब तक कि क्रोध को न जीत लूंगा तब तक आगे पढ़ना व्यर्थ है।

यह कह कर उन्होंने पढ़ना बन्द कर दिया। एक महीने बाद परीक्षक ने उन सब की परीक्षा ली। सब ने अपने पाठ सुना दिये परन्तु धर्मराज ने कहा "कि मुझे पहिला ही पाठ याद हैं। और नहीं। परीक्षक को क्रोध आया और बेंत मारना आरम्भ कर दिया। परीक्षक मारते मारते थक गए परन्तु युधिष्ठिर के चहरे पर क्रोध की झलक भी न दिखाई पड़ी तब परीक्षक ने द्रोणाचार्य को बुला कर कहा कि युधिष्ठिर सब राजकुमारों में बड़े हैं और एक दिन इनको भारत का सम्राट होना है परन्तु इन्होंने सबसे कम वाक्य सीखे है। तब द्रोणाचार्य ने कहा कि हम ही भूल पर हैं इन्होंने पहिले वाक्य को अपने आचरण में उतार लिया है कि इतने पिटने पर भी इनके चहरे पर क्रोध का नाम निशान भी नहीं।

परीक्षक यह सुन लज्जित हुए और क्षमा माँगने लगे।

॥ नं० १८ होनहार बालक ॥

जब गोपाल कृष्ण गोखले मराहठी की चौथी कक्षा में पढ़ते थे तब गुरु जी ने एक दिन अङ्कगणित के कुछ प्रश्न घर पर हल करने को दिये। किसी ने भी उनको हल न किया और यह उन प्रश्नों को किसी दूसरे आदमी के द्वारा हल कराके

स्कूल में ले गये। गुरू जी ने इनको पहिला नम्बर दिया और प्रशंसा करने लगे।

गुरू जी ने उन्हें बहुत समझाया कि गोपाल तुम तो अपने प्रश्न हल कर लाये हो। और तुमको नम्बर भी पहिला मिल गया है। फिर भी तुम क्यों रोते हो तुमको देख कर अन्य विद्यार्थियों को रोना चाहिये। यह सुन गोपाल और भी रोने लगे और बोले कि हे गुरू जी महाराज मैं स्वयं प्रश्न हल करके नहीं लाया था दूसरे से हल कराके लाया था। इस कारण मुझे पहिला नम्बर नहीं देना चाहिये।

मैंने आपको धोखा दिया इसलिये कृपा कर मेरा अपराध क्षमा कीजिये।

यह सुन कर सब विद्यार्थी चकित होगये गुरू ने उसको प्रसन्न देखकर कहा कि "सचाई इसका नाम है।"

अन्त में यही गोपाल कृष्ण गोखले बड़े होकर वाइसराय की कौंसिल के बड़े सदस्य हुये।

॥ नं० १९ होनहार बालक ॥

शिवा जी एक बार बारह वर्ष ही की उम्र में अपनी माता के साथ बीजापुर गये। वहां उनका पिता, बादशाह आदिलशाह के यहाँ रहता था। जब शिवा जी की भेंट बादशाह से हुई तब उन्होंने निडर होकर बादशाह को साधारण तौर से सलाम

किया। बादशाह इस वर्ताव से अवश्य क्रोधित होता परन्तु उसने शिवाजी को नादान बालक समझ कर क्षमा कर दिया।

एक बार दरबार में शिवाजी को क्रोधित देख कर बादशाह पूछा कि तुम क्रोधित क्यों हो तब शिवाजी ने कहा कि यहां खुले बाजार गौ मांस बेचा जाता है। हम हिन्दू लोग इसे नहीं देख सकते। इस बात की पुष्टि अन्य हिन्दू सरदारों ने भी की। इस पर बादशाही हुकम से सब सड़कों पर गौ मांस बेचना बन्द हो गया। एक दिन अकस्मात एक कसाई सड़क पर गौ मांस बेचता मिल गया। शिवाजी ने उसका सिर काट लिया। इस पर बादशाह ने कह दिया जो जैसा करेगा वैसा ही फल पावेगा। इसने बादशाही आज्ञा का उलंघन क्यों किया। वही वीर शिवाजी अपनी बहादुरी के ही कारण से दक्षिणी भारत के राजा हुए। इसी से तो कहते हैं कि कर्मों को देख कर चतुर आदमी ताड़ जाते हैं कि यह बड़े होने पर किस ढंग का आदमी होगा। इसके ऊपर क्या ही अच्छी कहावत है कि—

होनहार बिरवान के, होत चीकने पात।

॥ नं० २० एकाग्रता ॥

चंचल मन को स्थिर करके अपने काम में लगा रहना ही एकाग्रता है। जो मनुष्य दृढतापूर्वक एकाग्र चित्त से अपने काम में अटल रहता है, सफलता हर समय उसके साथ खड़ी रहती है।

मनुष्य चाहे विचारशील हो चाहे परिश्रमी हो परन्तु विना एकाग्रता के वह अपने काम में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। यह विद्वानों का मत है कि महाराज द्रोणाचार्य कौरव और पाण्डवों को धनुष विद्या सिखाया करते थे। एक दिन गुरू जी ने उनकी परीक्षा ली। एक मैदान एक पेड़ के ऊपर बनावटी चिड़िया स्थापित की और आज्ञा दी कि इसके नेत्र बध करो। उस समय सब राजकुमार प्रस्तुत हुए तब गुरूजी ने एक एक से पूछा " कि तुमको इस पेड़ पर क्या दिखाई देता है। ,, सबने कहा " चिड़ियाँ " फिर अन्त में अर्जुन को पूछा गया। अर्जुन ने कहा कि " मुझे चिड़िया की आंख के अलावा कुछ दिखाई नहीं देता है। अन्त में गुरू जी ने कहा कि अर्जुन ही चिड़ियाँ को आँख बींध सकता है। और कोई राजकुमार इसमें सफलता प्राप्त नहीं कर सकता।

आखिरकार अर्जुन ने ही चिड़िया की आंख में तीर

मार दिया ।

सच है एकाग्रता ही सफलता की कुंजी है ।

पूर्व समय में यूनान में एक प्रसिद्ध गणितज्ञ आर्कमेंडीज था । एक बार यूनान के बादशाह के पास एक सुवर्ण का ताज आया । बादशाह ने उस ताज की परीक्षा के लिये कि यह नकली है या असली आर्कमेंडीज को बुलाया । वह बहुत दिन तक इस बात पर निर्णय करता रहा । एक दिन एकाएक स्नान करते समय बादशाह के प्रश्न का उत्तर याद आया । वह फौरन ही राजा के पास नंगा दौड़ा गया । वह एकाग्रता में इतना लवलीन था कि कपड़े पहिनने की उसको सुधि तक न रही । इसीप्रकार वह अपने मकान में बैठा हुआ गणित का एक प्रश्न लगा रहा था । उसी समय यूनान के दुश्मन यूनान पर चढ़ आये और मार काट करने लगे । तब वे आर्कमेंडीज के पास मारने को दौड़े । तब उसने कहा भाई थोड़ी देर ठहरो मुझे अपना प्रश्न निकाल लेने दीजिये ।

देखिये इसी का नाम एकाग्रता है । इसमें अनुरक्त रहने के कारण शिक्षा प्रद आर्कमेंडीज का दृष्टान्त चला आ रहा है । जिसको बहुत से चतुर मनुष्य आचरण में लाकर अपने काम में कृतार्थ होते हैं ।

एकाग्रता के महत्व का प्रमाण वेद पुराण भी देते हैं कि बड़े भारी ब्रह्मवेत्ता ऋषि दत्तात्रेय जी ने एक साधारण [illegible] बनाने वाले मनुष्य को गुरु किया था । इसकी कथा इस [illegible]

है कि एक बार शहर के राजा की सवारी बड़ी धूम धाम के साथ निकल रही थी। शहर के मनुष्य सभी उसका तमाशा देख रहे थे। उसी समय ऋषि दत्तात्रेय जी वहाँ आ निकले।

उस वक्त उन्होंने देखा कि एक तीर बनाने वाला तीर बना रहा था, वह बिलकुल एकाग्रचित्त है। राजा की ओर उसका बिल्कुल ध्यान नहीं। वह अपनी धुनि में मस्त है। दत्तात्रेय ने उसे अपना गुरू बनाया क्यों कि उसमें एकाग्रता का गुण था।

॥ भावार्थ ॥

संसार में ऐसा कोई कार्य नहीं कि जिसे मनुष्य एकाग्रता के गुण से पूरा न कर सके। कठिन से कठिन कार्य एकाग्रता से सहज ही में हो जाते हैं। इसलिए इससे यह शिक्षा प्राप्त होती है कि सब को अपने हृदय में एकाग्रता का गुण रखना चाहिये, चाहे जैसा काम आरंभ करो, उसे एकाग्रचित्त होकर शुरू करो। उसमें अवश्य ही सफलता प्राप्त होगी। वेद पुराण भी इसके साक्षी हैं।

❀ नं० २१ कच्चे ब्रम्हज्ञानी ❀

किसी नगर में नाम मात्र के ब्रह्मज्ञानी थे। एक आयुर्वेद

चोरी वैद्य उस नगर में आये। जब वैद्यराज जी जिस किसी के पास जाकर अपनी आजीविका की बात करते तो वे मनुष्य कहते कि "सर्व जगत ब्रह्ममय"। किसी का लेना देना। औषधि रोगादि सब कुछ भ्रम ही है। वैद्यराज निराश हो घूमने लगे समयानुकूल उस देश का राजा रोगी हुआ और चिकित्सा भी कराई परन्तु सब औषधियों ने निर्गुण रूप धारण कर लिया ये वैद्यराज भी राजा के पास गये। उस दयामय ईश्वर की कृपा से राजा को आराम होने लगा। तब राजा ने कहा कि वैद्यराज जी कोई ऐसी औषधि दो कि तत्काल गुण दिखा कर शरीर की पुष्टि करे।

तब वैद्य बोले इसके लिए जिस दवा की आवश्यकता है वह आपके नगर में अधिकता से पाई जाती है। राजा बोले "वह क्या है"।

वैद्यराज ने कहा "कि एक ब्रह्मज्ञानी मंगाइये उसका तेल निकाला जायेगा। राजा बोला हमारे नगर में अनेक ब्रह्म-ज्ञानी हैं। नौकर को बुला कर राजा ने उसे बाजार भेजा। वह नौकर एक दूकानदार से "बोला कि तुम ब्रह्मज्ञानी हो,,। वह बोला "हां,, नौकर ने कहा तुमको राजा बुलाते हैं।

दूकानदार "क्यों,,।

नौकर ने कहा "कि ब्रह्मज्ञानी का तेल निकाला जायगा,,

इस बात को सुनकर दूकानदार घबरा गया और बोला "भाई मैंने तो हंसी की थी। हम क्या हमारे कुनबे के भी ब्रह्मज्ञानी नहीं हैं।,, फिर इस प्रकार दूसरों ने भी कहा कि हमारे बाप दादा भी ब्रह्मज्ञानी नहीं हैं।

अन्त में मन्त्री से जाकर कहा कि तुम भी ब्रह्मज्ञानीहो इस कारण तुम्हारा ही तेल निकाला जायगा।,,तब मंत्रीजी बोले "हम ब्रह्मज्ञानी तो नहीं वरन् अज्ञानी हैं। वे नाम मात्र के ब्रह्मज्ञानी सब वचन से विदल होगये और वैद्यराज से क्षमा मांगने लगे। फिर वैद्यराज ने राजा की औषधि करके बल बढ़ा दिया। इस कारण इससे यह शिक्षा मिली कि भक्ती को छोड़ ऐसे ब्रह्मज्ञानी न बनिये जिससे दोनों मार्ग जायें। ब्रह्मज्ञान का मार्ग महा कठिन है इसलिए ईश्वर की भक्ती करो जिससे असार संसार से पार हो जाओ।

ऐसे ब्रह्मज्ञानी आज कल बहुत हैं। तुलसीदास जी ने कहा भी है कि—

❀ दोहा ❀

ब्रह्मज्ञान बिन नारि नर, करहिं न दोसरि बात।
कौड़ी लागि लोभ बस, करहिं विप्र गुरु घात॥

❀ नम्बर २२ जिन्दगी का शुभकर्म ❀

किसी मुल्क में एक धनाड्य पुरुष रहता था। उसके तीन पुत्र थे। उन बाप बेटों की सदाचरण की प्रशंसा सब जगह फैल गई। जब बाप का अन्तिम समय आया तो उसने विचारा कि धन अधिक होने के कारण तीनों भाइयों में तकरार होगी इस लिए जीवित ही इस धन को बराबर बराबर बांट दूं। इस तरह विचार करके वह धन तीनों में बांट दिया। अन्त में एक अमूल्य जवाहर बाकी रहा। तब उसके पिता ने कहा कि तुम में से जो कोई अच्छा काम करके दिखलायेगा। यह जवाहर उसी को बतौर इनाम के दिया जायगा। एक दिन बड़े बेटे के पास एक रास्तागीर विश्वास करके रकम रख गया था। उसके हृदय में लोभ की बहुत सी लहर उठीं परन्तु उसने जिन हाथों से उस रकम का रख लिया था उन्हीं हाथों से उसने रास्तागीर को वापिस कर दिया। इस पर रास्तागीर ने कुछ इनाम देना चाहा परन्तु उसने न लिया और यह सारा हाल पिताजी को आकर सुनाया पिताजी ने कहा " हे प्राणप्रिय पुत्र तुम इस एक बुराई से बच गये तो क्या किया। कोई बड़ा भी काम किया है। एक बुराई के न करने पर तुमको इतना हर्ष, शोक है-तुमको अपनी उम्र पर शर्म आनी चाहिए।

इसी प्रकार एक दिन मझले बेटे ने अपने बाप से

आकर कहा कि, मैं एक नदी की तरफ जा निकला और क्या देखता हूं कि एक नव शिशु पानी में बहा जा रहा है। वहां पर नदी अगम थी। एक किनारे पर बैठी हुई बच्चे की माता विलाप कर रही थी। इस दशा को देख कर मुझ पर न रहा गया। यद्यपि यह काम खतरनाक था परन्तु मैं शरीर का ध्यान न रख कर नदी में कूद पड़ा। उस बच्चे की तो जान जा ही चुकी थी परन्तु मेरी जान ईश्वर ने बचाई। अन्त में बच्चे को उसकी माता से मिला दिया।

बाप ने सुन कर कहा कि बेटा भले आदमियों के यही काम हैं बस तुम्हारी यही इनाम है। यदि मनष्य पर इतना भी भलाई का काम न हुआ तो उसका जीवन ससार में व्यर्थ है।

इसी तरह एक दिन छोटे पुत्र ने अपने बाप से कहा "कि मैं एक दिन एक पहाड़ पर चला जा रहा था। रात आधी के करीब हो गई थी, मेघ घटा छाई हुई थी। वहां हाथों हाथ कुछ दिखाई नहीं देता था और भय अत्यन्त था। मेरे साथ में न आये थे और न मेरा कोई भाई ही था परन्तु वह एक सर्वशक्तिमान परमात्मा मेरा साथी था। इतने ही में बिजली के प्रकाश से रास्ता में मनुष्य दिखलाई दिया ;जो कि खार के मुंह पर सो रहा था, मानो उसके भाग्य उसको खड़े रोते थे और उसके सर पर मौत खेल रही थी। एक ही करवट में उसका काम तमाम होजाता। इतने ही में फिर बिजली

चमकी तो मैंने उसकी शक्ल देखी तो वह मेरा खून का प्यासा दुश्मन निकला। यदि मैं चाहता तो उसे थोड़ी ही देर में मार सकता था। परन्तु मुझे ईश्वर से भय हुआ और दिल ने भी आवाज दी मरते हुये को बेरहमी से मारना ये महा अधर्म है। तुम्हारी परीक्षा का यही समय है यदि उत्तीर्ण होना चाहो तो धर्म मार्ग ग्रहण करो।

बस यह विचार करते ही मैं उसको मौत के मुंह से उठा लाया और एक चौरस जगह पर सुला दिया और मैंने अपना मुंह इस कारण ढक लिया कि ये जागने पर मुझे देख कर शर्मिन्दा न हो।

बाप ने यह सुन कर उसे छाती से लगा लिया और बहुत प्रशंसा की कि बेटा तुम संसार में यशस्वी हो यह सुन जवाहरात उसे दे दिया।

इससे यह शिक्षा मिली कि दुश्मन के साथ भी धर्म का वर्ताव करो।

किसी कवि ने कहा है—

॥ दोहा ॥

जो तो कूं कांटा बुवै, ताहि बोय तू फूल ॥
तो कूं फूल के फूल हैं, वा को हैं तिरशूल ॥

नं० २३ धैर्य

यह भी मनुष्य में एक विलक्षण गुण है। जितने कठिन से कठिन काम हैं वे धैर्य से ही होते हैं। अधैर्य मनुष्य कर्त्तव्य को न सोच कर अकर्त्तव्य कर डालता है और पीछे पछिताता है इसलिए यह कहावत प्रसिद्ध है कि—

विना विचारे जो करे, सो पाछे पछिताय।
काम बिगारै आपनो, जग में होत हंसाय॥

धीरज विहीन पुरुषों का कार्य कभी सफल नहीं हो सकता है इस लिये हर एक काम में एकाग्रता और धीरज धरना आवश्यक है। जैसे उदाहरण है कि—

किसी मनुष्य ने एक सिंह का बच्चा पाला था। उस पर वह इस तरह प्यार करता था मानों वह एक घर ही का आदमी है। धीरे २ वह बच्चा एक पूरा सिंह हो गया परन्तु उसे यह ज्ञान नहीं था कि स्वामी वैसे ही रुधिर मांस का पिंड है जैसे कि मैं दिन प्रति दिन प्रेम पूर्वक खाता रहता हूं। वह शेर अपने स्वामी को देखकर आता और हाथ पांव चाटने लगता। एक समय एक कुर्सी पर उसका स्वामी बैठा किताब पढ़ रहा था और ठंडी २ हवा चल रही थी।

सिंह भी उसकी बांई ओर बैठा हुआ था। वह मनुष्य सिंह को देखकर प्रसन्न हो रहा था और विचार कर रहा

था कि मेरे समान संसार में कोई नहीं है क्योंकि जिस सिंह के डर से दुनियाँ कांपती है वही सिंह आज मेरे साथ बकरी की भांति पूंछ हिलाये फिरता है। इस गर्व के करते ही नतीजा मिलता है कि सिंह उसके हाथ को चाटने लगा। मतलब यह है कि सिंह को हाथ चाटते २ आध घण्टा हो गया। जब उसकी जीभ की रगड़ से हाथ में कुछ रुधिर चमचमा आया और सिंह को कुछ स्वादिष्ट मालूम पड़ा। जब स्वामी के हाथ में तकलीफ मालूम हुई तो अपना हाथ खींचा। सिंह ने पहिले तो हाथ न खींचने दिया परन्तु जब उसने हाथ को झटका तो सिंह गरज उठा। उसका स्वामी फौरन ताड़ गया कि सिंह की दृष्टि बदल गई है। अगर मैं हाथ को खींचता हू तो यह मार कर ही खा जायगा। इस कारण धीरज से काम लेना चाहिये। यह विचार कर पुस्तक की ओर मुंह करके अपने नौकर को बुलाया और कहा कि जल्दी आओ और बंगले में भरी हुई दुनाली बन्दूक रखी है सो उसे लाकर चुपके से सिंह के सीना पेट में मारो। नहीं तो यह अभी मुझे मार डालेगा। यह सुन कर नौकर भी थर्रा गया और वह धैर्य को धारण कर बंगले में से बन्दूक ले आया। और डेढ़ हाथ की दूरी से सिंह के पेट पर ऐसा गोली मारी कि वह मछली की भांति भूमि पर पड़ा ही रह गया और दूसरी गोली सीने पर ऐसी मारी कि सिंह ने साँस तक भी न ली और नौकर ने स्वामी के प्राण बचा लिये। तब स्वामी बोला " कि जान बची और लाखों पाये "।

अब देखिये कि यदि स्वामी पहिले ही अधैर्य होकर हाथ खींचता तो सिंह एक पल में ही मार कर खा जाता। श्रुति पुराण कवि और पण्डित जनों ने भी यह उच्चारण किया है कि पूर्व राजा तथा देश की प्रधान उन्नति का कारण धैर्य ही है। इस लिए जिस काम को आरम्भ करो प्रेम पूर्वक एकाग्रता के साथ धीरज धारण करके करो तो उसमें अवश्य ही सफलता प्राप्त होवेगी। जैसे किसी कवि ने कहा है कि—

कैसे काज ह्वै है हाय घात सब बूढ़ि जै है।
कादरता ऐसी क्यों भूलि हू न करिये॥
करिके विवेक को सुसाज निज जी में पचि।
रचि के उपाय निज व्याकुलाई हरिये॥
ईश्वर को याद कर जनैये पुरुषारथ को।
दत्त कहैं काहू के न जाय पाँम परिये॥
हारिये न हिम्मत सुकीजै कोटि किम्मत को।
आपति में पत्ति राखि धीरज को धरिये॥

धैर्य तथा अभ्यास से कठिन से कठिन काम भी सरल हो जाते हैं।

जैसे किसी ने कहा है कि—

॥ दोहा ॥

करत करत अभ्यास के, जड़ मति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते, सिल पर होय निशान॥

———o———

नं० २४ बेश कीमती राम नाम हीरा

एक महात्मा विद्या तथा राम नाम के प्रभाव से अति पूजित था। इसको देख कर एक गंवार मनुष्य ने विचार किया कि यदि मैं इस महात्मा का शिष्य हो जाऊंगा तो बे परिश्रम के आराम प्राप्त करके गुणवान तथा यशस्वी हूंगा।

वह महात्मा के पास गया फिर दण्डवत प्रणाम करके बोला कि हे महाराज! मैं आपका शिष्य होना चाहता हूं। महात्मा ने बहुत इनकार किया परन्तु वह मनुष्य हठ पड़ गया और चरणों में गिर पड़ा तो महात्मा जी ने उसको अपना शिष्य बना लिया और कहा कि मैं तुमको एक ऐसा गुरु मन्त्र दूंगा कि जिसको संसार में कोई विरला ही जानता हो। महात्मा की इन बातों को सुन कर वह मनुष्य बहुत प्रसन्न हुआ। एक दिन महात्मा जी ने उसके कान में मंत्र दिया कि—

"राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे,
सहस्रनाम ततुल्य राम नाम वरानने।
हरे कृष्णा हरे कृष्णा कृष्णा कृष्णा हरे हरे।
हरे रामा हरे रामा रामा रामा हरे हरे॥
ओ३म् नमो भगवते वासुदेवाय नम.॥

शिष्य इन राम नाम के मन्त्रों को पाकर बहुत खुश हुआ और बोला कि—

तुलसी संत सुअम्ब तरु, फूल फलहिं पर हेत।
इतते वे पाहन हने, उतते वे फल देत॥

अब एक दिन शिष्य गंगा स्नान को गया और जब लौट कर आया तो बहुत से मनुष्यों को उक मन्त्र उच्चारण करते देखा तो अपने मन में विचार किया कि महात्मा झूंटा है, मुझे धोखा दे दिया है कि इन मन्त्रों को कोई नहीं जानता। इनको सारा संसार जानता है। यह कहकर महात्मा के पास आकर सारा वृतान्त सुनाया तो महात्मा जी ने एक हीरा निकाल कर दियो और कहा कि इसे तुम साग वाली, पंसारी और महाजन के पास नम्बर वार ले जाना और कीमत की जांच कराके लाना परन्तु बेचना नहीं। शिष्य उसे लेकर चल दिया और साग वाली को जाकर यह हीरा दिया। उसने कहा कि यह काँच की गोली है। बालकों के खेलने को अच्छी है इसलिए इसका पाव सेर साग ले जा।

शिष्य उसे लेकर फिर पंसारी के पास गया तो पंसारी ने कहा कि यह बाटियाओं में पड़ी रहेगी इस लिये इसका आध सेर नमक ले जा। परन्तु शिष्य इनकार करके चल दिया। और फिर सुनार के पास पहुंचा तो उसने कहा कि इसके ५०) दे सकते हैं फिर वह महाजन के पास गया महाजन ने ५००) देने का इकरार किया परन्तु उसने ५००) लेने से इनकार किया और हीरा को लेकर महात्मा के पास पहुंचा। महात्मा ने हंसकर कहा कि अब तुम इसे फलां जौहरी के पास ले जाना। शिष्य ने एसा ही किया तो जौहरी ने उसे १०००)

देना मंजूर किया। परन्तु शिष्य फिर लौट आया तब महात्मा ने कहा कि बच्चा अपने प्रश्न का उत्तर तो समझ गये शिष्य ने कहा कि नहीं समझा तो महात्मा बोले कि प्रमाण सहित उत्तर तुमको मिल गया कि मैंने जो तुमको दिया था सो अमूल्य हीरा था। इसका परख सिवाय जौहरी के कोई नहीं जानता। इसी प्रकार यह राम नाम हीरा अमूल्य है। इसकी परख भक्त ही जानते हैं। सब नहीं जानते। कोई साग वाली की भांति, कोई पंसारी की भांति, कोई सुनार की तरह और कोई महाजन की तरह अलग अलग हीरा रूपी राम नाम के महत्व को जानते हैं।

महात्मा के इन प्रमाणिक वचनों को सुन कर शिष्य के हृदय के कपाट खुले और हाथ जोड़कर चरणों में गिर पड़ा और बोला कि सत्य है—

बिनु गुरु होय कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ विराग बिनु।
गावहिं बेद पुराण, सुख कि लहहिं हरि भगति बिनु॥

नं० २५ होनहार होकर रहती है

इस संसार में चाहे कोई कितना ही प्रयत्न करे परन्तु जो होनहार होती है वह होकर रहती ही है। ज्योतिष द्वारा भविष्य की होनहार घटना से परिचित हो जाने पर भी मनुष्य चाहे

कोटानिकोट उपाय करे परन्तु वह होकर ही रहती है। जैसे दृष्टान्त है कि जब परीक्षित के पुत्र जनमेजन राज्याधिकारी थे तो उन्होंने एक दिन पंडितों को बुला कर भविष्य की बात पूछी तब पंडित जनों ने कहा कि "हे महाराज भविष्य में आप कोढ़ी होंगे। अब आप चाहे जितना प्रयत्न करें परन्तु यह होनहार अमिट है।,, तब जनमेजन ने कहा—

"इसके बचने के उपाय बतलाइये।,, यह सुन कर पंडितों ने राजा को चार बातें बतलाईं। (१) आपके नगर में एक घोड़ा बिक्री के लिये आवेगा आप इच्छुक होकर न खरीदिये परन्तु तुम अवश्य ही उसे खरीदोगे। यह होनहार है मिट नहीं सकती। (२) दूसरे उस घोड़े पर सवार होकर दक्षिण दिशा को आखेट के लिये नहीं जाना। परन्तु तुम इस बात को नहीं मान सकते। (३) तीसरे दक्षिण दिशा में तुम को एक नव युवक कन्या मिलेगी उसको साथ न लाना। परन्तु आप इसको भी नहीं मान सकते। (४) चौथे यज्ञ में वृद्ध ब्राह्मणों को बुलाना युवकों को नहीं। आपके कोढ़ी होने के चारों कारण हैं और अमिट हैं। राजा ने यह सुन कर कहा कि कोढ़ के चार कारणों से परिचित हो गया। अगर मैं इन मार्गों पर ही पदार्पण न करूंगा तो कोढ़ी किस तरह हो जाऊंगा ऐसे तो पूर्वज ही थे जो परस्पर लड़कर मर गये। तब उसके गुरु ने कहा कि "राजा तुम होनहार से परिचित होने पर भी नहीं मान सकते हो।

यह बात थोड़े ही दिनों में प्रत्यक्ष हो जायगी। अब थोरेर कालानुसार एक व्योपारी आया। राजाको यह घोड़ा अद्वितीय मालूम पड़ा और इच्छुक होगया। उसी समय गुरु आदि ब्राह्मणों की बताई हुई बात स्मरण होगई। परन्तु चेष्टा से लोभ उत्पन्न होता है। और लोभ से शुद्ध बुद्धि नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार राजा चेष्टा में मग्न होकर तत्वज्ञान को भूल गया। और मन के वशीभूत होकर विचार किया कि गुरु के बताये हुये तीन कामों को न करूंगा। घोड़ा तो अवश्य ही खरीद लेना चाहिये। यह विचार कर उस घोड़े को खरीद लिया। इसी प्रकार राजा के मन में आया कि दक्षिण दिशा को भी देखना चाहिये वहां जो नव युवक कन्या मिलेगी उसे साथ न लाउंगा। उसी घोड़े पर सवार होकर राजा दक्षिण दिशा को चल दिया। वहां पर उसको बताई हुई नव युवक कन्या मिली। राजा उसके रूप को देखकर मोहित होगया और उसने मन रूपी अश्व पर सवार होना चाहा किन्तु मन ही राजा की बुद्धि पर सवार हो लिया। और हृदय के सारे तत्व ज्ञान को भुला दिया, अन्त में राजा उस कन्या को साथ ही ले आया और उसको अपनी सह-धर्मिणी स्वीकार कर लिया और धर्म सहित प्रजा पालन में लग गया। थोड़े दिन पश्चात उस होनहार के दिन आप तो राजा ने विश्व विजय के लिए अश्व मेध यज्ञ आरम्भ किया और गुरु आदि ब्राह्मणों की बात पर विचार करके वृद्ध ब्राह्मणों को बुलाया। परन्तु होनहार तो अमिट है। जब यज्ञ में वृद्ध

ब्राह्मण दांत न होने की वजह से स्वाहा की स्वाहा बोलने लगे तो राजा ने क्रोधित होकर उनको यज्ञ से निकाल दिया और युवक ब्राह्मणों को बुलाया जब अश्व लिङ्ग पूजन का समय आया तो रानी के हाथ पर अश्व का लिंग रखा गया। यह चरित्र देख कर सारे यज्ञकर्त्ता युवक ब्राह्मण हंस पड़े। राजा को उस समय अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ और तलवार लेकर सब ब्राह्मणों का सर उड़ा दिया। ब्राह्मणों का सिर उड़ाने के कारण राजा ब्रह्म हत्या का दोषी हुआ और ब्रह्महत्या के दोष से राजा के शरीर में कोढ़ पैदा होगया।

तब उन्हीं गुरु आदि ब्राह्मणों ने कहा " जनमेजय होनहार अमिट है या नाशवान। तुमको प्रत्यक्ष मालूम पड़ा है या नहीं। तुम होनहार से जानकार होने पर भी उससे न बच सके। अब आप बतलाइए कि आप मूर्ख हैं या आपके पुरखा राजा यह सुन कर बहुत लज्जित हुआ। फिर गुरु जी ने कोढ़ को दूर करने के लिये राजा को महाभारत की कथा सुनाई और कह दिया कि तुम महाभारत की किसी बात को झूंठी न बतलाना। अन्त में कथा सुनते २ उसके शरीर का कोढ़ दूर होगया। परन्तु जब यह सुना कि भीमसेन ने हाथी आकाश में फेंक दिये। राजा इसको झूंठी समझ कर नाक सिकोड़ गया। बस उसके नाक ही में कोढ़ रह गया।

भावार्थ ॥

इससे स्पष्ट होता है कि चाहे कोई कितना ही परिश्रम

करे परन्तु होनहार हो कर ही रहती है ।

॥ दोहा ॥

होनहार होतव्यता, तैसी मिले सहाय ।
आपु न आवै ताहि पैं, ताहि तहां लै जाय ॥

———o———

नं० २६ नेक कमाई की बरकत

प्राचीन काल में भारतवर्ष में एक धर्मज्ञ, प्रजा पालक प्रतापी और उन्नतिशील राजा था । अहिंसा प्रिय दया का मानो चन्द्रमा ही था और वह अपनी प्रजा को प्राणों के समान प्रिय समझता था । चाहे कैसा ही ब्राह्मण उसके दरवाजे पर आता, उसे दान देता और आदर सत्कार करता था । यही कारण था कि भारतवर्ष उस समय उन्नति के शिखर पर था और यह सोने की चिड़िया कह कर पुकारा जाता था । उसी समय में एक वन में एक विद्वान ब्राह्मण रहता था । परन्तु वह महा गरीब थो और वेदानुसार धन उपार्जन करके अपनी जीविका व्यतीत करता था । एक उसके बारह वर्ष की कन्या थी । एक दिन ब्राह्मणी ने कहा " कन्या विवाह के योग्य है इस कारण इसका कुछ प्रबन्ध होना चाहिए ।,, ब्राह्मण बोला कि " कन्या तो बिवाह के योग्य है परन्तु उसके विवाह के लिए धन कहां से एकत्रित हो ।,,

तब ब्राह्मणी ने कहा "महाराज आपका यश चारों ओर फैल रहा है क्योंकि आप पूर्ण धुरन्धर पण्डित हैं और भिक्षा मांगना ब्राह्मण का मुख्य धर्म है। इसलिये आप किसी राजा महाराजा से भिक्षा मांगे तो आप से कोई भी मना नहीं कर सकता। ब्राह्मण को यह राय बहुत अच्छी मालूम पड़ी और खाने को भोजन लेकर अपने देश के राजा के पास गया। द्वारपाल ने राजा को ब्राह्मण के आने का समाचार सुनाया तो राजा सिंहासन को छोड़ कर दरवाजे पर आया और ब्राह्मण को आदर पूर्वक सभा में ले गया। और सिंहासन पर बिठला कर कुशल क्षेम पूछी। तब ब्राह्मण ने कहा कि "जब आप ऐसे धर्मज्ञ, शील राजा हैं तो किसकी सामर्थ है जो आपके सामने पड़कर प्रजा को कष्ट पहुंचाये परन्तु आप बतलाइये कि राज्य में कोई तरह की अशान्ति के कारण आत्मा को क्लेश तो नहीं है। तब राजा ने यह कहा कि जिस देश में विद्वान सतोगुणी, वेदानुवादी महात्मा निवास करते हैं, वह देश मानो रत्नों की खान तथा सुख ऐश्वर्य का घर है यह वेदों ने कहा है—

बाद कुशल क्षेम के राजा ने कहा कि "हे नाथ! आप अपने आने का कारण बतलाइये। तब ब्राह्मण ने कहा कि मैं केवल भिक्षा ही की इच्छा से आया हूँ। राजा ने यह सुनकर अपने धनकोषाधिकारी को बुलाकर आज्ञा दी कि इन ब्राह्मण देव को दससहस्त्र मुद्रा दो। ब्राह्मण ने सुनते ही उत्तर दिया कि

हे कृपानाथ यह तो थोड़ा है। फिर राजा ने कहा अच्छा बीस हजार स्वर्ण मुद्रा दो ।,, फिर भी ब्राह्मण ने कहा हे राजन् यह भी थोड़ा है। अब राजा ने धीरे २ ब्राह्मण का दास बनना अंगीकार किया। और अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया। तब भी ब्राह्मण ने यह ही कहा "कि कृपानिधि यह तो बहुत ही थोड़ा है। यह सुनकर राजा ने कहा कि " मैं शरीर तक आप को दे चुका अब मेरे पास देने को क्या शेष है। तब ब्राह्मण देव बोले " कि आप मुझे अपना वह धन दीजिये जो प्रजा के हितार्थ धर्म पूर्वक स्वयं परिश्रम करके कमाया हो। राजा ने ब्राह्मण की आज्ञा शिर धारण की। और नम्रतः पूर्वक कही "कि कल तक आप ठहरिए। ब्राह्मण ने यह बात स्वीकार कर ली। उसी रात को राजा अपना स्वरूप बदल कर प्रजा के सुख दुख की परीक्षा करने के लिए और स्वयं परिश्रम से धन पैदा करने के लिए निकला तो क्या देखता है कि शहर के सारे मनुष्य सुख की नींद सो रहे हैं। परन्तु एक लुहार अपनी दुकान खोले स्वयं परिश्रम कर रहा है। राजा ने उसके पास जाकर कहा कि" हे सज्जन यदि आपके पास कुछ अधिक काम है तो हमें बतला दीजिये।,, यह सुन कर लुहार ने कहा कि " मेरे पास काम तो साधारण ही है परन्तु तुम इस काम को पूरा कर दीजिए। हम तुम्हें चार पैसे देंगे। राजा ने उस बात को स्वीकार कर लिया। लुहार अपने घर पर जाकर सो गया। राजा ने उस काम को प्रात काल तक पूर्ण कर दिया। लुहार

देखते ही लुहार को बहुत प्रसन्न हुआ और चार पैसे के बजाय पांच पैसे देने लगा परन्तु राजा ने कहा कि "मुझसे चार पैसे नियत हुये हैं।,,

इस लिये मैं चार ही पैसे लूंगा। लुहार से चार पैसे लेकर राजा चल दिया। और नित्य प्रति के अनुसार दरबार जोड़ा। कुछ समय के बाद वह ब्राह्मण भी वहां आ गया। ब्राह्मण को राजा ने चार पैसे दिये। और ब्राह्मण ने प्रसन्नता पूर्वक ले लिये और तुरन्त ही घर का मार्ग लिया। ब्राह्मणी ने ब्राह्मण को आता देख कर बहुत हर्ष मनाया और ब्राह्मण से पूछा कि भिक्षा में क्या धन लाए हो।

तब ब्राह्मण ने कहा चार पैसे तब ब्राह्मणी ने चार पैसे छुड़ा कर आंगन में फेंक दिए और ब्राह्मणी सोरही। प्रातकाल जब वे दोनों उठे तो क्या देखते हैं कि उन चार पैसों के स्थान पर चार वृक्ष खड़े हुए हैं और उनकी पत्तियां स्वर्ण की और फल फूल मानों जगमगाते हुए हीरा मोती हैं। ब्राह्मणी और ब्राह्मण यह देख कर बहुत खुश हुए और इन वृक्षों से धन लेकर अपनी कन्या का विवाह कर दिया और नित्यप्रति अत्यन्त पुण्य दान किया। अन्त में वह ब्राह्मण एक धनाढ्य पुरुष होगया।

उसके धनवान होने का समाचार उसी राजा के पास गया। राजा ने सुनकर आश्चर्य किया और परीक्षा के निमित्त ब्राह्मण के घर आया। तब ब्राह्मण ने प्रश्न किया कि आपके

पास यह धन कहां से आया।

तब ब्राह्मण ने कहा कि हे राजन् तुम्हारे नेक कमाई के चार पैसे मुझे फलीभूत हुए हैं और चारों वृक्षों को उखाड़ कर राजा को जड़ में चार पैसे ही दिखला दिए।

राजा को विश्वास हो गया कि अवश्य ही नेक कमाई की बरकत है।

॥ भावार्थ ॥

इससे सिद्ध होता है कि परिश्रम द्वारा जो धन उपार्जन होता है वह निरन्तर उन्नतिकारी होता है।

नं० २७ शरीर जीव का साथी है या स्वार्थी

मनुष्य का शरीर पंच भूतों से मिल कर बनता है। अन्त में वह भी मिट्टी में मिल जाता है। मनुष्य का गुण ही बड़ा है इसका मांस भी काम में नहीं आ सकता। खाल से बाजे नहीं मढ़े जाते हैं और हाड़ों के आभूषण भी नहीं बनते हैं। अर्थात् मनुष्य का मरने के पश्चात कोई भी अंग काम में नहीं आ सकता। यहां तक कि इसको श्वान भी नहीं खा सकते। अस्तु निरन्तर श्री पुरुषोत्तम भगवान का स्मरण करे वा परोपकार ही करे। भवसागर से पार होने का यही एक सुगम उपाय है। अपने शरीर पर मनुष्य को भूल कर भी गर्व न करना चाहिए। क्योंकि ये स्वार्थी हैं क्योंकि भूखा रहने

पर तो मान बिगाड़ना है और मर जाने पर दृष्टि को बिगाड़ना है। इस पर एक दृष्टान्त है कि—

एक बहेलियो एक दिन तीर कमान हाथ में लिए हुए बन में एक नदी के पास पहुंचा जिसमें एक प्यासी हिरनी अपनी प्यास बुझा रही थी। बहेलिये ने हिरनी को देख कर उसके बदन में तीर मार दिया। हिरणी तीर के लगते ही भाग गई और आगे बहुत दूर निकल कर एक झाड़ी में बैठ गई।

इधर बहेलिया ने विचार किया कि यह हिरणी कहीं न कहीं पर गाफिल होकर अवश्य ही गिर पड़ेगी। इस कारण आगे चल कर देखना चाहिए। जिस समय हिरनी भागी थी उस समय उसके शरीर से रुधिर टपकता जाता था। वह बहेलिया उस रुधिर के खोज पर चलने लगा। चलते २ वह रुधिर ठीक झाड़ी ही के पास बन्द मालूम पड़ा। यानी झाड़ी से आगे रुधिर का निशान न था। बहेलिये ने कहा कि रुधिर से इस झाड़ी तक हिरनी का पता चलता है। आगे रुधिर का निशान नहीं है। इस से सिद्ध होता है कि हिरनी अवश्य ही इस झाड़ी में मौजूद है। आगे बढ़ कर देखा तो हिरनी झाड़ी में बैठी हुई है। बहेलिया ने तुरन्त ही उसके मारने को तीर सम्हाला। त्योंही हिरनी बोली कि "थोड़ी देर ठहरो,,। पीछे आपकी इच्छा हो सो करना। परन्तु मेरी एक बात का उत्तर दो। बहेलिये ने यह सुन कर कहा कि " अच्छा पूछो ,,तब हिरनी

बोली कि " तुम जो जीव हिंसा करते हो इस पाप में तुम्हारे घर वाले भी शामिल हैं या नहीं। बहेलिया ने कहा कि " जब मैं नित उनकी उदर पूर्ति करता हूं तो वे मेरे साथी क्यों नहीं होंगे। तब हिरनी ने कहा कि यह बात तुम्हारी असत्य है। संसार में कोई किसी का नहीं है। वेद भी यही कहता है कि " अहिंसा परमोधर्मः " तब बहेलिया ने कहा " कि तुम मुझे प्रमाण सहित समझाओ कि संसार में कोई किसी का नहीं है। उस समय हिरनी ने उसे प्रमाण देकर समझाया कि जब मेरे शरीर में चोट पहुंच जाती तो मैं चाट कर या भूखी प्यासी रह कर अपनी चोट में आराम पहुंचाती और भूख लगने पर दस दस कोस तक जाकर उदर पूर्ति करती और खून में पानी की कमी होने के कारण जब प्यास लगती तो मैं दुख सह कर बीस २ मील पर जाकर नदियों में प्यास बुझाती थी।

खून में पानी की कमी से जब मैं नदी में पानी पी रही थी तो तुमने तीर मार दिया। तो भी मैं इस शरीर की रक्षा के लिए यहां आई परन्तु इस शरीर के स्वार्थी रुधिर ने ही तुमको मेरा पता बतला दिया और तुम्हें यहां तक ले आया। अब बतलाओ जब शरीर भी अपना साथी नहीं है जिसके लिए जीव दुख सह कर परिश्रम करता है। तो घर वाले किस तरह साथी होंगे। उसी दिन से बहेलिया वैरागी हो गया।

॥ भावार्थ ॥

इसका भावार्थ यह है कि सम्पूर्ण संसार स्वार्थी है।

कोई किसी का निःस्वार्थ प्रेमी नहीं है।

---o---

लोभ से बनावटी बातों पर विश्वास न करो।

एक बहेलिया वृक्ष पर बैठी हुई एक चिड़िया को जाल में फंसा कर ले आया और मार्ग में हर्ष पूर्वक जा रहा था। चिड़िया ने कहा कि " तुम मुझे ले जा कर अवश्य ही मारोगे। इस से मैं मरने से पहिले ही एक शिक्षाप्रद बात बतलाती हूं कि लोभ से कभी किसी की बनावटी बातों पर विश्वास न करना।,, बहेलिया ने कहा " बहुत अच्छा।,,

थोड़ी दूर पर चल कर चिड़िया ने फिर कहा " कि मैं इस समय मोती निकालूंगी इस लिए तुम मुझे कुछ ढीला करदो। बहेलिया चिड़िया की शिक्षाप्रद बातों को भूलकर लोभ में आकर उसे ढीला कर दिया। वह तुरन्त ही उड़ कर पेड़ पर बैठ गई और बोली कि तुम तो मेरी बात को थोड़ी ही देर में भूल गए। बहेलिया यह सुन कर लाचार हो गया और अपने घर लौट आया

॥ भावार्थ ॥

इससे यह भावार्थ निकला कि "कभी किसी की लोभमयी बातों में न आना चाहिए क्योंकि लोभ की नाव डूबती है।,,

---o---

नं० २९ सांसारिक नाता सत्य है या असत्य

महाराज परीक्षित ने पूछा कि हे मुनिनाथ! सांसारिक जो नाता है वह सत्य है या असत्य। इस पर शुकदेव जी बोले कि ईश्वर के साथ जो नाता है वही सत्य है। और सब नाते असत्य हैं। जैसे कि—

एक मनुष्य एक महात्मा के पास चेला होने के लिए गया। महात्मा ने उसको अपना चेला बना कर प्राणायाम चढ़ाना तथा उतारना और मरे हुए को जीवित करना यह सब विद्यायें सिखला दीं। एक दिन महात्मा ने कहा कि संसार में न कोई किसी का बाप है न माता, सब स्वार्थी हैं। यह जीव तो आदि से ही सनातन है।

जब तक संसार में जीवन है तभी तक का ये नाता है। यह सुनकर चेला बोला कि " हे नाथ! मेरे तो बाप तथा माता, भाई, कुटम्बी, स्त्री, और बहिन सब अति प्रिय हैं। और वे भी मुझे प्राणों से प्यारा समझते हैं। महात्मा ने कहा कि बच्चा! यह स्वार्थी प्यार है। ,, परन्तु चेला ने इस बात को न माना। तब महात्मा ने कहा कि तुमको हम परीक्षा करके दिखला सकते हैं कि कोई किसी का नहीं तुम अपने घर जाकर प्राणायाम चढ़ा लेना। तब मैं तेरे माता पिताओं की परीक्षा लूंगा। एक जहर के कटोरे को जब तेरा कोई न पीवेगा तब मैं पी लूंगा और प्राण त्याग दूंगा। फिर

तुम धीरे २ अपने प्राण उतार लेना और विद्या से मुझे भी जीवित कर लेना। महात्मा की इस बात को सुन कर शिष्य चल दिया और अपने घर प्राणायाम चढ़ा कर लेट गया। उसके घर वाले उस पुत्र को मरा हुआ जान कर चिल्लाने लगे। पीछे से वही महात्मा वहां आए और उसके घर वालों को बहुत ही समझाया। परन्तु उसकी समझ में कुछ नहीं आया। तब महात्मा ने सब कुटम्बियों के सामने एक कटोरा लेकर पानी में जहर मिला दिया। और उसकी माता से कहा कि "पुत्र के साथ माता का अतुलनीय प्रेम होता है।"

इसलिए यदि तुम अपने पुत्र को जीवित चाहते हो तो इस जहर के प्याले को पी लीजिए। तुम मर जाओगी और तुम्हारा पुत्र बच जायगा। तुम्हारे मरने का समय भी है यह सुन कर माता ने उत्तर दिया कि मैं इस प्याले को नहीं पी सकती। इसके मरने से क्या हुआ, मेरे उदर से और पुत्र ही उत्पन्न हो जांयगे। मैं अपने प्राण क्यों दूं। हम तो लकीर के फकीर हो कर शोक मनाते हैं। फिर महात्मा ने पुत्र के पिता से वही प्रश्न किया। पिता ने कहा कि "यह पुत्र नहीं था पूर्व जन्म का दुश्मन था जो बदला लेकर चला गया। मैं इसके पीछे वृथा ही क्यों प्राण दूं। मेरे और हो पुत्र उत्पन्न हो जाँयगे। इसके पश्चात महात्मा ने उसकी वहिन से प्याला पीने को कहा परन्तु उसने भी इनकार कर दिया कि मेरे और भी भाई उत्पन्न हो जावेंगे।

फिर महात्मा ने उसकी स्त्री को बुला कर समझाया। स्त्री का धर्म है कि पति की सेवा करे। इसलिए तुम पति के कार्य में प्राणदान करो और स्वर्ग को जाओ। इस पर स्त्री ने कहा कि जो आया है सो अवश्य ही जायगा। इसमें कोई संशय नहीं। इस कारण पति के मरने का मुझे कोई दुख नहीं है। मरना तथा जन्म लेना यह तो सांसारिक नियम है। हानि, लाभ, जीवन, मरण, व यश और अपयश सब विधाता के हाथ हैं। इस लिए मैं अपने प्राण नहीं दे सकती। महात्मा इन बातों को सुन कर हंसे और कहा कि "कुटम्बियो तुम लोगों में से कोई इस प्याले को पी सकता है। सब ने कहा "नहीं" जब इसके माता पिता ने ही नहीं पिया तो हम क्यों कर पीवें।,, महात्मा ने बात की बात ही में उस प्याले के जल को पी लिया और प्राण त्याग दिए। इसके बाद उस शिष्य ने धीरे २ अपने प्राण उतार लिए और परीक्षा देख कर हर्षित हुआ। उसने अपनी विद्या के बल से महात्मा को भी जिला लिया। तब महात्मा ने कहा "बच्चा सांसारिक नाता सत्य है या असत्य।"

चेला लज्जित हो गया और उसी दिन से मोह त्याग विरक्त होगया।

॥ भावार्थ ॥

जीव और ईश्वर के साथ में नाता है वह सत्य है और

सब सांसारिक नाते असत्य हैं। और जगत के सब पदार्थ मिथ्या तथा सार रहित हैं। ये मृग तृष्णा जल के समान हैं और ठूंठ में मनुष्य तथा सीप में चांदी मालूम होना ये सब मिथ्या है। वास्तव में यह सत्य नहीं परन्तु अज्ञानता के कारण सत्य प्रतीत होते हैं। बस यही संसार का हाल है। किसी कवि ने क्या ही अच्छा लिखा है—

॥ सवैया

वारिध तात हते विधि से सुत, सूरज सोम सहोदर दोऊ ।
रंभा, रमणी भगिनी जो भई, मघवा मधुसूदन से बहनेऊ ।
तुच्छ तुषार हतो परिवार, भयो न सहाय कोई विपति परेऊ ।
त्यों कहिके जल मांहि गिरयो, सुख सम्पति में सबको सबकोऊ ॥

—o—

नं० ३० भक्त बड़े हैं भगवान से

एक बार अरब के बादशाह का पुत्र मर गयो तो बादशाह को बहुत शोक हुआ और शहजादे की माता तो शोक में पागल हो गई। अन्त में सात दिन बीतने पर बादशाह ने एक नाव में तेल भरवा कर उस शहजादे को रख दिया और अपना दरबार जोड़ा। उसमें बहुत से फकीर, मौलवी, और काजी मातमपुरसी के लिए आए। तब बादशाह ने प्रश्न किया कि कुरान शरीफ में लिखा है कि फकीर उसी का नाम है जो मरते को जिन्दा तथा जिन्दे को मार दे। इस कारण

एक साल के अन्दर ऐसा ही फकीर लाओ। नहीं तो मैं सब मौलवी फकीरों को कत्ल करा दूंगा। बादशाह की इन बातों को सुन कर सभा में सन्नाटा छा गया। और सब काठ की मूर्ति के समान देखने लगे। काटो तो उसके शरीर में रुधिर नहीं और अपनी जान बचाने का प्रयत्न करने लगे। फिर उन्होंने ऐसे फकीर की तलाश को देश २ में भ्रमण करने के लिए नेता चुने।

भारतवर्ष में जो नेता आया था उसका नाम फैजी था। हर एक नेता के खाने को तथा घर के प्रबन्ध को बादशाह ने रुपये दिये। जिस समय फैजी भारतवर्ष में आयो था उस समय यहां अकबर बादशाह का शाशन-प्रबन्ध था। फैजी दिल्ली गया और बादशाह को सारा वृतान्त सुनाया तब अकबर ने अपने प्रधान प्रतिनिधि बीरबल को बुलाकर फैजी का सारा सन्देशा सुना दिया तब बीरबल ने कहा कि हमारे देश में ऐसे अनेक फकीर होंगे जो मरे को जिन्दा कर दें परन्तु मैं ऐसे तीन फकीरों का नाम जानता हूं। (१) पहिले श्रीवृन्दावन में सूरदास जी (२) श्री अयोध्या जी में गोस्वामी तुलसी दास जी (३) तीसरे शिवपुरी (अर्थात् काशी जी में महात्मा कबीरदास जी, यह सुन कर बादशाह ने एक पत्र लिख कर फैजी को दे दिया और वृन्दावन में सूरदास जी के पास भेज दिया।

फैजी ने वहां जाकर सूरदास जी को बादशाह

का पत्र दिया महात्मा जी ने पत्र पढ़ कर उत्तर दिया किमधु-सूदन श्री वृन्द्रावन बिहारी की कृपा से यह काम तुच्छ हैं, परन्तु मैं चौरासी कोस व्रजमंडल को त्याग कर दूसरी जगह नहीं जा सकता हूं यदि आप शाहजादे को वृन्द्रावन लाओ तो सब काम सिद्ध हो सकता है।

यह सुन फैजी अयोध्या पहुंचा और वही बादशाही पत्र महात्मा तुलसीदास जी को दिया। पत्र को पढ़ते ही महात्मा जी ने उत्तर दिया कि मेरा हिन्दू धर्म है और अरब में मुसलिम धर्म है अस्तु वहां जाने को मेरा चित्त सन्नद्ध नहीं होता। यदि आप शाहजादे को यहां लाओ तो श्री राम कृपा से जीवित हो सकता है कोई काम भगवान को दुश्कर नहीं है। यह सुन फैजी वहां से चल कर शिवपुरी पहुंचा।

महात्मा कबीरदास जी पत्र के पढ़ते ही अरब जाने को प्रस्तुत हो गये क्योंकि वे तो सबको ब्रह्ममय जानते थे। अरब पहुंच कर आप बादशाह के दरबार में पहुंचे। बादशाह ने अति सत्कार किया पुन: महात्मा जी ने शाहजादे की लहास को मगाया और कहा कि उठ खुदा के हुक्म से, परन्तु वह न उठा दुबारा फिर कहाकि उठ कुदरत के हुक्म से परन्तु वह फिर भी सजीव होकर न उठा। अन्त में महात्मा जी ने कहा कि उठ मेरे हुक्म से भक्त के प्रताप से शाहजादा उठ बैठा। सजीव होने पर बाद-शाह अपने दल से मिला और महात्मा जी से कहा कि कुरान शरीफ में लिखा है कि जो फकीर खुदा से बड़ा बने वह मूर्ख

दंड देने के काबिल है। आप भी खुदा से बड़े बने हो इस कारण दंड देना उचित है।

यह सुन कबीरदास जी ने कहा कि बादशाह आपकी अक्ल में फर्क है क्योंकि अभी तक तुम को यह मालूम नहीं है कि भक्त का कैसा प्रताप होता है। भगवान भक्त को अपने से बड़ा मानते हैं।

॥ तत्वार्थ ॥

भगवान अपना अपमान सह सकते हैं परन्तु भक्त का अपमान नहीं सह सकते। प्रमाण को ऋषि दुर्वासा और अम्बरीश की कथा है। कलियुग में भगवन नाम ही सार है। इस हेतु थोड़ा बहुत प्रेम पूर्वक नाम कीर्तन अवश्य करना चाहिए क्योंकि भवसिंधु से पार होने का यही एक उपाय है।

नं० ३१ नग्न कौन है

नग्न कौन है तथा नग्न किसे कहते हैं और किस प्रकार के आचरण वाला पुरुष नग्न संज्ञा प्राप्त करता है। नग्न के स्वरूप का यथावत् वर्णन करते हैं।

ऋक्, साम और यजु यह वेदमयी वर्णों का आवरण स्वरूप है जो मनुष्य मोह के वशीभूत होकर इसका त्याग कर देता है वह पापिष्ट 'नग्न, कहलाता है। समस्त वर्णों क संवरण (ढकने वाला वस्त्र) वेदमयी ही है, इस हेतु उसका त्याग कर देने पर पुरुष 'नग्न, हो जाता है इसमें कोई सन्देह नहीं।

ब्रह्मचारी, ग्रहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यासी—ये चार ही आश्रम हैं। जो जन ग्रहस्थ आश्रम को छोड़ने के पश्चात वानप्रस्थ या सन्यासी नहीं होता वह पापी भी 'नग्न, ही है।

जो ब्राह्मणादि वर्ण अपने धर्म को त्याग कर परधर्मों में प्रवृत्त हो जाते हैं अथवा हीनवृत्ति का अवलम्बन करते हैं वे 'नग्न, कहलाते है ऐसा विद्वान वर्णन करते हैं।

प्राचीन काल में सौ दिव्य वर्ष तक देवता और राक्षसों का परस्पर संग्राम हुआ। उसमें ह्राद और प्रभृति असुरों द्वारा सुरगण पराजित हुए। अत देवगणने क्षीर सागर पर जाकर भगवान की आराधना की कि दयानिधि रक्षा करो असुर हमको दुख देते हैं। देवताओं ने भगवान की प्रेम पूर्वक महान बिनती की भगवान तो दयानिधि हैं ही। वहीं पर शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण करके प्रगट हुए और देवताओं से आराधनो का कारण पूछा।

देवता बोले हे नाथ! प्रसन्न होकर हम सरणागतों की रक्षा कीजिए। हे भगवान! दैत्यों ने ब्रह्मा की आज्ञा उल्लंघन कर हमारे और त्रिलोकी के यज्ञ भागों का अपहरण कर लिया है। हमारे द्रोही अपने वर्ण धर्म के पालक तथा वेदमार्गावलम्बी और तपस्वी हैं अस्तु हमसे वे नहीं मारे जाते आप ही कोई यत्न बतलाइए।

भगवान ने यह विनय सुन कर अपने शरीर से माया मोह को प्रगट किया और कहा कि यह उन सब दैत्यगणों को

मोहित कर देगा, तब वे वेद मार्ग का उल्लंघन करने से तुम लोगों से मारे जा सकेंगे।

भगवान की ऐसी आज्ञा होने पर देवगण उन्हें प्रणाम कर जहां से आए थे वहां चले गये तथा माया मोह असुरों के पास गया। माया मोह ने देखा कि दैत्यगण तपस्या में लगे हुये हैं। तब मयूर-पिच्छधारी दिगम्बर और मुंडित केश माया मोह ने असुरों से इस तरह कहा। माया मोह बोला—हे असुरो कहिये आप किस कामना से तपस्या कर रहे हैं। किसी लौकिक फल की चेष्टा है या पारलौकिक की।

असुरगण बोले—हे महामते! हमने पारलौकिक फल की इच्छा से तपस्या आरम्भ की है। अब आपको क्या कहना है।

माया मोह बोला—यदि आपको मुक्ति की इच्छा है तो जैसा मैं कहता हूं वैसा करो। आप लोग मुक्ति के खुले द्वार रूप इस धर्म का पालन कीजिए। यह धर्म परमोपयोगी है। इससे बढ़ कर और कोई धर्म नहीं। इस प्रकार अनेक भांति की युक्तियों से अति रंजित वाक्यों द्वारा माया मोह ने असुरों को वैदिक धर्म से भ्रष्ट कर दिया। यह धर्म युक्त है यह धर्म विरुद्ध है। यह सत् है, यह असत् है, इससे मुक्ति होगी इससे नहीं, यह परमार्थ है यह अपरमार्थ है। यह कर्म है यह अकर्म है, यह दिगम्बरों का धर्म है यह साम्बरों का धर्म है। इस प्रकार के अनन्त वादों को दिखला कर माया मोह ने असुरों को स्वधर्म

से च्युत कर दिया।

मायामोह ने दैत्यों को त्रयी धर्म रहित कर दिया और वे मोहग्रस्त हो गये। पीछे अन्य दैत्य भी ऐसे ही कर दिये। मतलब यह है कि सारे असुरगण धर्म से विमुख कर दिये।

माया मोह ने रक्त वस्त्र धारण कर असुरों के समीप जा मधुर वाक्यों से कहा कि, यदि तुमको मोक्ष की इच्छा है तो पशुहिंसा को त्याग कर बोध प्राप्त करो। यह सम्पूर्ण जगत विज्ञानमय है ऐसा जानो। विद्वानों का ऐसा मत है कि, यह संसार अनाधार है, रागादि दोषों से दूषित है। इस संसार संकट में जीव अत्यन्त भटकता फिरता है ऐसा जानो। इस भांति माया मोह ने अल्पकाल ही में असुरों से वैदिक धर्म की बात चीत करना भी छुड़ा दिया।

उनमें से कोई वेदों की, कोई देवताओं की और कोई ब्राह्मणों की निन्दा करने लगे, [वे कहने लगे—] "हिंसा से भी धर्म होता है-अग्नि में हवि जलाने से फल होगा-यह भी बच्चों की सी बात है। अनेकों यज्ञों के द्वारा देवत्व लाभ कर के यदि इन्द्र को शमी आदि काष्ट को ही भोजन करना पड़ता है तो इससे तो पत्ते खाने वाला पशु ही अच्छा है। यदि यज्ञ में बलि किए पशु को मोक्ष प्राप्त होती है तो यजमान अपने पिता ही को क्यों नहीं मार डालता। यदि किसी और पुरुष के भोजन करने से भी किसी पुरुष को तृप्ति होसकती है तो देशाटन के समय खाद्य पदार्थ के लेजाने की क्या आवश्यकता है। पुत्रगण

घर पर ही श्राद्ध कर दिया करें। इसलिए श्राद्धादि कर्मकांड लोगों को अन्ध श्रद्धा ही है, इस प्रकार के अनेक वचन कह कर माया मोह ने असुरों को धर्म पथ से विचलित कर दिया। अत, वे वदमयी के त्याग से नग्न होगये। इतने ही काल में देवों ने तैयारी करली और युद्ध छिड़ा, उसमें सम्पूर्ण विरोधी असुर गण देवों द्वारा मारे गये।

पहिले उनके पास जो स्वधर्म रूप कवच था। उसी से उनकी रक्षा हुई थी अब की बार उनके नष्ट हो जाने से वे नष्ट हो गए क्योंकि वेदमयी रूप वस्त्र का त्याग कर के नग्न हो गये थे इससे यह शिक्षा मिली कि स्वधर्म को कभी न त्यागना चाहिये यदि स्वधर्म का पालन करोगे तो असुर गणों की तरह रक्षा कर सकते हो और त्याग करने पर उन्हीं की तरह नष्ट होना पड़ेगा ऐसा पुराण वर्णन करते हैं।

---o---

३२ निष्काम कर्म योगी बालक

एक नगर में एक पुरुष के पुत्र उत्पन्न हुआ जो अपाहिज था। उसके माता व पिता उसे उसी अतुलनीय प्रेम की दृष्टि से देखने लगे। और अत्यन्त हर्ष से प्यार करने लगे।

एक दिन जब वह अपाहिज बालक कुछ बड़ा होगया था। अपने पिता समेत मकान पर बैठा हुआ था। उसे देख कर गांव के दो चार मनुष्य वहाँ पर आ विराजे। कुछ देर पश्चात् वहां पर यह प्रश्न छिड़ा कि बेचारे इस बालक का

जीवन किस प्रकार कुछ उपरान्त होगा। यह सुन कर उसके पिता ने कहा कि अभी तो यही हमारे आश्रय है क्योंकि नित प्रति हम ही उदर पूर्ति करते हैं। हमारे मरणोपरान्त इसके जीवन का कोई आधार न रहेगा, यदि यह हमारे सामने ही मर जाय तो बहुत ही हित कर हो।

इतने में पिता ने प्यार से कहा बेटा तुम किस के भाग्य का खाते हो। पुत्र ने उत्तर दिया कि अपने भाग्य का और जो सम्पूर्ण संसार का आश्रय है वही मेरा भी आधार है क्योंकि जो जल मेघों द्वारा बरसाया जाता है वह प्राणियों के जीवन के लिये अमृत रूप होता है और औषधियों का पोषण करता है हे पिता ! उस वर्षा के पानी से महान वृद्धि को प्राप्त होकर समस्त औषधियाँ और फल पकने पर सूख जाने वाले (गोधूम यव आदि अन्न) प्रजावर्ग के [शरीर की उत्पति और पोषण आदि के] साधक होते हैं। उनके द्वारा मनुष्य गण नित्यप्रति यज्ञ कर के देवताओं को सन्तुष्ट करते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण यज्ञ, वेद, ब्राह्मणादि वर्ण, समस्त देव समूह और प्राणिगण वृष्टि के ही आश्रित हैं। हे पिताजी ! अन्न को पैदा करने वाली वृष्टि ही इन सब को धारण करती है तथा उस वृष्टि की उत्पत्ति सूर्य से होती है। सूर्य का आधार ध्रुव है, ध्रुव का शिशुमार चक्र है, तथा शिशुमार के आश्रय श्री नारायन हैं उस शिशुमार के हृदय में श्री नारायन स्थिति हैं जो समस्त प्राणियों के पालनकर्ता तथा आदि भूत सनातन पुरुष

है। वे ही उन के बालक हैं और कोई किसी के बालक नहीं।

पुत्र के वचन सुन कर पिता ने बहुत बुरा भला कहा और यह भी कहा कि यदि तू ऐसा ही जानता है तो आज से हमारे आश्रय न रह कर अपनी उदर-पूर्ति कर, अब देखिये भावी प्रबल है क्या कराती है। विधाता ने भाग्य में जो कुछ अंकित किया है वह सब अमिट है। अपाहिज बालक भी इसी प्रकार विचार करते हुये भगवान के आश्रित हो सरकता हुआ चल दिया।

भगवान भी दया समुद्र हैं। अपने भक्त को इस तरह दुखी देख कर दुखी हुए। बालक ने विश्वास-पूर्वक भगवान का आश्रय लिया था। इसी से वह भक्त कहा गया। कहा भी है कि भगवान विश्वास निवासी हैं इसी से तो बालक का अपने में दृढ़ विश्वास देख कर कृपा की और हृदय रूपी आकाश में विज्ञान चन्द्रमा का प्रकाश किया।

ज्ञान चन्द्र के उदय होने पर बालक सरकता हुआ आगे वन में समाधि लगा बैठ गया और निर्भय हो कर भव-भय-हारी त्रिय-ताप-निकंदन भगवान का पूर्ण ध्यान किया, न अन्न खाता था और न पानी पीता था।

एक दिन श्रीभगवान की प्रेरणा से नारदजी वहां होकर निकले और बालक को तप में लवलीन देख कर अति प्रसन्न हुए और समीप जाकर बोले कि हे पुत्र! मैं देवर्षि नारद हूं, तेरी तपस्या से अति हर्षित हूं अब तू अपनी मनोकामना पूर्ण कर, परन्तु

बालक ने इसका कुछ उत्तर न दिया श्री ब्रह्म रिषि नारद जी के बहुत कहने पर यही उत्तर दिया कि जहां आपके दर्शन मिलें वहीं मेरे लिए सर्वस्व है और मुझे घर की आवश्यकता नहीं है। अन्त में नारद जी उससे जितेन्द्रिय कह कर चल दिये और यह भी कहा कि तेरी तपस्या अटल रहे।

पुनः नारद जी ब्रह्मा जी के दरबार में गए और प्रणाम कर उस अपोहिज निष्काम कर्मयोगी बालक का वृतान्त सुनाया। ब्रह्मा जी यह सुन कर उसके दर्शन के लिये इच्छुक हुये और त्रिलोचन भगवान शंकर के पास पहुंचे। और सारा वृतान्त सुनाया। महादेव जी भी दर्शन को तैयार हो भगवान विष्णु के पास पहुंचे।

भगवान विष्णु भी उस हाल को सुन कर उनके साथ हो लिये और उसी वन में पहुंच कर उस बालक के दर्शन करने लगे। पुनः ब्रह्मा जी बालक के निकट जा कर बोले कि हे पुत्र! मैं ब्रह्मा तुम्हारे उग्र तप से अति प्रसन्न हूं और मन वांछित फल देने वाला हूं। अब जो कुछ तुम्हारी अभिलाषा हो सो मेरे द्वारा पूर्ण करो। परन्तु बालक ने उत्तर न दिया। अन्त में यही कहा कि हे पितामह जी! आपके दर्शन ही सर्व कल्याण कारक है मुझे और कोई चेष्टा नहीं है। ब्रह्मा जी ने बार २ ही वर देने को कहा परन्तु बालक ने बार २ ही मना कर दिया। अन्त में ब्रह्मा जी प्रसन्न हो चल दिए और आशीर्वाद दिया कि तुम्हारी समाधि अटल रहे। इसके पश्चात्

भगवान शंकर गए।

भगवान शंकर ने कहा कि पुत्र मैं त्रिपुरारि तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हूं। अब तुम अपनी मनोकामना पूर्ण करो। महा तपस्वी बालक ने कहा कि आपके दर्शन ही प्रधान सुख के देने वाले हैं। अन्त में महादेव जी भी प्रसन्न वदन हो आशीश देकर चल दिये।

पुनः कमल नयनभगवान बालक के पास गये और गोदी से उठा कर बोले कि पुत्र मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूं। तुम्हारी जो मनोकामना हो सो मुझसे कहो। बालक ने कहा कि हे स्वामी जब एक अव्यक्त, अजर अमर और अविनाशी भगवान पुरुषोत्तम मेरे लोचनों के सामने हैं तो मैं ऐसे फल के सिवाय और किस फल की चेष्टा करूं क्योंकि सांसारिक सम्पूर्ण सुख व्यर्थ है केवल आपकी निष्काम कर्म द्वारा भक्ति ही मोक्ष कारी है।

जो पुरुष आपकी भक्ति तथा दर्शन रूप हीरा मणि को त्याग कर काँच रूप सांसारिक सुखों को ग्रहण करे वह महा मूर्ख संसारी बन्धनों में बधने वाला अधम जड़ है। हे भगवान! आपकी जिस मूर्ति के लिये ब्रह्मा तथा महेश और अनेक देव मुनि निरन्तर तप करते हैं और वेद नेति २ कह कर पुकारते हैं। मैं ऐसे कृपासागर, दीन निवाज, आपकी भक्ती को छोड़ कर और किस पदार्थ को बड़ा समझ कर उसको चेष्टा करूं। भगवान अन्तर्यामी, बालक के इस प्रकार वचन सुन कर और

फल की कामना से रहित देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुये और उसी वक्त सारूप मोक्ष दी (अर्थात् अपने रूप से मिला लिया)

अब विचार कीजिये कि निष्काम कर्मयोग क्या चीज़ है। जिसके प्रताप से मन वचन से परे जो परमात्मा है तथा ब्रह्मा और शिव इस कर्म कर्ता के दर्शन करने को स्वयं आये। और जिस भगवान का सुर, नर मुनि और किन्नर सदैव निरन्तर ध्यान करते हैं तब भी नहीं मिलते वे भगवान निष्काम योगी के दर्शनों को पधारे।

॥ भावार्थ ॥

संसार में मनुष्य को नित प्रति भगवान का जप करना चाहिये और सब कुछ भगवान का समझ कर सिद्ध असिद्ध में समत्व भाव रखे, असक्ति और फल की इच्छा का त्याग करे और भगवत आज्ञानुसार केवल भगवान ही के लिये सब कर्मों का आचरण करे तथा श्रद्धा भक्ति पूर्वक मन, वाणी और शरीर से सब भांति कमल नयन भगवान ही की शरण हो कर नाम, गुण और प्रभाव सहित उनके स्वरूप का निरन्तर चिन्तन करे। इस प्रकार के निष्काम कर्मयोग द्वारा भवसिन्धु का पार करना महा सुगम है।

———o———

तत्वज्ञान की भूल से दुख होता है।

मनुष्य का मुख्य जो तत्वज्ञान होता है कारणवश उस के भूल से त्यागने पर दुख प्राप्त होता है जैसा श्री कपिल

भगवान ने कहा है कि—

तद्विस्मरणो अपि भेको वत:

किसी देश में एक राजा राज्य करता था। वह बड़ा धर्मात्मा था। शम, दम, धृति, क्षमा, सत्य, पराक्रम, नीतिः नम्रता, और अनुग्रह आदि क्षत्रिय धर्मों से सम्पन्न था। प्रजा को प्राणों के समान समझता था।

एक दिन राजा आखेट को वन में गया और जब शिथिल होकर अपने शहर की ओर लौटा तो उसे एक नव युवक कन्या मिली। राजा उसके स्वरूप को देख कर मोहित हो गया और बोला कि हे सुन्दरी! तुम कौन हो? तब उसने कहा कि हे प्रभावशाली नीति निपुण राजा! मैं मेंढ़क राज की कन्या हूं।

राजा ने कहा कि तुम मेरी सहधर्मिणी बनना स्वीकार करो। प्रथम तो कन्या ने मना किया, परन्तु राजा के बार २ आग्रह-पूर्वक कहने से कन्या ने कहा कि यदि आप मुझे चाहते हैं तो मेरा एक व्रत आपको पूरा करना होगा, सो क्या? कि मेरी दृष्टि में कभी जल न आवै। राजा इस वचन को अंगीकार करके उस कन्या को अपने नगर में ले आया।

एक दिन राजा और वह नव युवक कन्या शैया पर आनन्द में मग्न थे। उसी क्षण कन्या ने कहा कि महाराज यहां कहीं जल है? राजा ने अपने तत्वज्ञान को भूल कर उसे जल दिखला दिया। जल के देखते ही वह उस में प्रवेश कर गई।

राजा उसके विरह में महा दुखी होकर रोने लगा और जंगल में उसको तलाश की परन्तु वह न मिली तो राजा उसके विरह में पागल हो गया।

॥ तत्वार्थ ॥

इस दृष्टान्त से यह सिद्ध हुआ कि तत्वज्ञान के भूलने से दुख प्राप्त होता है अतः अपने तत्वज्ञान पर अटल रहना चाहिए।

नं० ३४ प्रारब्ध मुख्य है

जो कुछ विधाता ने भाग्य में लिख दिया है वह होकर ही रहता है, चाहे कोई कितना ही परिश्रम करे परन्तु जैसा प्रारब्ध में लिखा है वैसा ही रहेगा, प्रारब्ध न बढ़ती है और न घटती है।

एक पुरुष अपनी स्त्री सहित कहीं जा रहा था और साथ अपना एक पुत्र भी था। मार्ग में उसे भगवान शंकर और पार्वती जी मिले। पार्वती जी को उनकी दशा देख कर दया आगई और महादेव जी से कहा कि हे नाथ इन पर दया करनी चाहिए। महादेव जी ने कहा कि, ये तीनों कमनसीब हैं मेरी दया से इनको लाभ न होगा। पार्वती जी ने बार बार आग्रह पूर्वक कहा तब महादेव जी ने उन से कहा कि तुम तीनों एक २ चीज मुझसे मांग लो वही तुरन्त मिल जायगी।

तब औरत ने सुन्दर स्वरूप मांगा वह तुरन्त रूपवती हो गई। एक राजा उसे देख कर हाथी पर चढ़ा ले चला। जब उस

के पति ने देखा कि मेरी स्त्री भी हाथ से गई तो महादेवजी से कहा कि इस औरत का रूप सूअर के समान हो जाय सो उसी क्षण होगई। अब जो राजा हाथी पर चढ़ा ले जारहा था उसके रूप से घृणा करके छोड़ दिया। अब पुत्र ने अपनी माता को बदसूरत जान कर यह मांगा कि मेरी माता पहिले जैसी थी वैसी ही हो जाय वह तुरन्त वैसी ही हो गई। मतलब यह है कि तीनों को कुछ न मिलो। तब महादेवजी ने पार्वती से कहा कि विधाता ने जो प्रारब्ध में लिखा है वही मिलता है।

॥ तत्वार्थ ॥

जो प्रारब्ध में लिखा है वही होता है।

———०:०———

नं० ३५ मन के जीते जीत होती है।

मन के जीतने पर पारलौकिक विजय सुगम है क्योंकि जब मन बिजय हो जाता है तो फिर पुन्यवृती बलवती हो जाती है जिससे वह धर्मात्मा कहलाया जाता है। पुन उसका अन्तःकरण निर्मल हो जाता है क्योंकि धर्मादिक कर्म करने से अन्तःकरण शुद्ध होता है। अन्तःकरण के शुद्ध हो जाने पर हृदय में ज्ञान का विकास होता है जिसके आधार से पार लौकिक विजय प्राप्त करना महा सुगम है।

एक शिष्य अपने गुरू के पास दर्शन करने जा रहा था। तब उसके पालतू तोते ने पूछा कि तेरे गुरू में क्या कमाल है। तब चेले ने कहा कि हमारे गुरू भगवन्नाम उच्चारण करते हैं

तोते ने कहा कि जब तक मैंने साहब का नाम नहीं लिया तब तक खुश था। और जब से साहब का नाम लिया है तब से पिंजरे में बन्द रहता हूं। आपके गुरू को यह प्रश्न पूछना चाहिये। चेले ने गुरू से वही बात पूछी। गुरूजी यह सुन कर प्राणायाम चढ़ा कर मुर्दे के समान हो गये तब चेले ने यह हाल तोते से कहा।

तोते ने यह सुन कर अपनी दशा भी गुरू जैसी करली चेला ने उसे मृतक समझ कर फेंक दिया। तोता प्रसन्न होकर उड़ गया और बोला कि तेरे गुरू ने मेरे प्रश्न का उत्तर तपस्या के प्रभाव से दिया है अर्थात् यह कि सिर्फ नाम लेना ही काम नहीं आता किन्तु मन को मारने से मुक्त होता है। गुरूजी ने मेरे छूटने की तदबीर भी प्राणायाम चढ़ा कर बतला दी थी सो भी मैं समझ गया और तेरे हाथ से छूट गया।

॥ भावार्थ ॥

इसका भावार्थ यह है कि यह तोता रूपी जीवात्मा पंच भूत से बने हुए पिंजड़े रूप शरीर में अज्ञान वश हो आजाता है और पीछे पश्चाताप करता है और तोते के पालने वाले के समान मन के अधिकार में रहता है। परन्तु जब मन को विजय कर लेता है तो इसकी पारलौकिक विजय हो जाती है। गुरु ने भी उत्तर दिया था कि यदि तू जाना चाहता है तो अपने खाने पीने का लोभ छोड़ कर मुर्दे के मानिन्द हो नहीं तो इसी कारागार में बन्द रहना पड़ेगा। इसी प्रकार यदि जीवात्मा मुक्त होना चाहता

है तो मन को वस में कर, क्योंकि मन पापों का मूल है और कारण के नाश से कार्य का नाश होता है। अस्तु मन के जीते जीत हो जाती है।

—o—

ईश्वर ने सब वस्तु सोच कर ही बनाई हैं।

परमात्मा ने संसार में जो कुछ उत्पन्न किया है वह सब विचार कर ही उत्पन्न किया है। इस पर दृष्टान्त है कि एक बेचारा रास्तागीर हारा थका हुआ एक जामुन के वृक्ष तले आया और अपनी गर्मी को शान्त किया। जब शीतल हवा ने सुख पहुंचाया तो वह अब चारों तरफ दृष्टि फेंकने लगा।

कुछ देर बाद उसकी दृष्टि जामुन पर पड़ी। पुनः सन्मुख खेत में काशीफलों पर दृष्टि पड़ी तो असमंजस में पड़ कर कहने लगा कि भगवान बड़ा नासमझ है जो इतने विशाल वृक्ष पर तो इतना छोटा फल और बेलों पर इतना बड़ा फल लगाया है। यदि मैं ईश्वर होता तो इसके बिल्कुल ही विपरीत काय करता अर्थात् बड़े वृक्ष पर बड़ा फल और छोटे पर छोटा फल लगाता।

इतने ही में विचार करते २ वह सो गया क्योंकि मार्ग का हारा थका था और दूसरे जंगल की शीतल हवा चल रही थी। कुछ देर बाद दैवयोग से जामुन का फल टूट उसके मुंह पर गिरा त्योंही वह जाग्रत हो गया। पुनः उसके हृदय में विचार उत्पन्न हुआ कि ईश्वर ने जो कुछ उत्पन्न किया है वह समझ

कर ही किया है। उसके खेल निराले हैं। मुझको प्रत्यक्ष प्रमाण मिल गया कि भगवान की कारीगरी निराली है। यदि इस वृक्ष पर बड़ा फल होता तो मेरी जान कैसे बचती इसी से तो भगवान ने बड़े फल बेलों पर लगाये हैं क्योंकि पृथ्वी पर पड़े रहेंगे। सच है ईश्वर की माया अपार है।

॥ भावार्थ ॥

ईश्वर की सम्पूर्ण सृष्टि रहस्य से भरी हुई है। इसमें कोई को संशय नहीं है ॥

नं० ३७ आप काज महा काज

आप काज महाकाज का अर्थ यह है कि, जो काम अपने हाथों से किया जाता है उसमें सफलता प्राप्त होती है। जो पुरुष अपने कामों को दूसरे के सुपर्द करता है उसमें असफलता प्राप्त होती है। यदि सफल हो भी जाता है तो बड़ी कठिनता सहन करके यदि अपना काम दूसरों से कराना है तो उसमें मदद अवश्य करनी चाहिये। इस पर निम्नलिखित दृष्टान्त है कि—

एक बार मुल्क अमरीका में लड़ाई हो रही थी। लड़ाई हो के काल में एक जमादार अपने सिपाहियों से काम ले रहा था वे सिपाही एक बड़े भारी शहतीर को उठा रहे थे और जमादार साहिब अलग खड़े थे और कहते जाते थे कि धन्य है वीरो, बल लगाओ। बेचारे सिपाहियों ने बहुत सा बल लगाया परन्तु वह शहतीर न हिला उसी वक्त वहां एक और अफसर आया जिसका

नाम जार्ज वाशिंगटन था। जार्ज वर्दी रहित था। इस कारण उन्हें कोई न पहिचान सका।

आर्ज ने कहा देखो जमादार जी शहतीर बहुत भारी है। इसके उठवाने में आप भी मदद करें। यह सुन जमादार झुंझला कर बोला कि मेरा काम हुक्म देने का है न कि शहतीर उठाने का यह सुन जार्ज ने कहा कि मेरा अपराध क्षमा कीजिये जो कि मैंने अनजाने आपसे ऐसा उच्चारण किया। यह कह कर आपने ही शहतीर उठवाने में परिश्रम किया। अस्तु शहतीर उठ गया। फिर जार्ज वाशिंगटन ने प्रश्न किया कि जमादार साहब जब कोई भारी कार्य आकर पड़े और आदमियों की कमी हो तो आप अपनी फौज के बड़े अफसर पर खबर भेजना तब मैं ही आ कर मदद करूंगा। यह सुनते ही जमादार ने जार्ज वाशिंगटन को पहिचान लिया और क्षमा प्रार्थना करने लगा फिर जार्ज जी ने उसे क्षमा किया। ऐसे ही अपने हाथ का काम अच्छा होता है इसी से इस कहावत का प्रयोग करते हैं कि, आप काज सो महा काज।

॥ तत्वार्थ ॥

जिस काम को आप कर सके उसे दूसरों से न करावे। यदि दूसरों से कराना ही पड़े तो उसमें सहायता देना उचित है। इस को हर कोई पुरुष परीक्षा कर देख सकता है कि यह कहावत कहां तक सत्य है।

——०❁०——

३८ सेवा करे सो मेवा खाय ।

उपरोक्त कहावत का भावार्थ यह है कि सेवा का फल मेवा के समान मधुर होता है । इस पर दृष्टान्त है कि—

एक दिन शरीर के सब अङ्ग परस्पर सलाह करने लगे कि हम तो काम करते २ मरे जाते हैं और यह स्वार्थी मेदा बैठा २ मुफ्त ही में खाता है, हमको नौकर समझता है । सब ने कहा कि आज से काम करना ही छोड़ दीजिये । ये थोड़े ही दिनों में स्वार्थीपने को भूल जायगा । ऐसा निर्णय कर पैरों ने चलना, तथा हाथों ने कार्य करना त्याग दिया । नेत्र देखने से बन्द होगये और कानों ने सुनना छोड़ दिया तथा मुंह ने भोजन करना बन्द कर दिया मतलब यह है कि सम्पूर्ण अंगों ने अपना २ कार्य छोड़ दिया ।

मेदे ने बहुत कुछ समझाया बुझाया परन्तु उसका प्रभाव किसी पर कुछ न पड़ा । मेदे ने फिर समझाया कि देखो ऐसा करने से तुमको पीछे पछताना पड़ेगा और तुम्हारी दशा उस नादान घोड़े के समान होगी जो कि अपने स्वामी के गिराने के निमित्त कूये में कूद पड़ा था । परन्तु उन्होंने मेदे की बात पर कुछ ध्यान न दिया क्योंकि विनाश काले विपरीति बुद्धी । उन्हों ने अपने आग्रह को न छोड़ा एक दो दिन तो उन्होंने अपने प्रण का निर्वाह किया । परन्तु जब अन्न न मिलने से क्षुधा बढ़ी और खून में पानी की कमी होने से तृषा ने दुख दिया । जब खुराक ही बन्द हो गई तो मेदा कहाँ से बने और बिन मेदा के धातु नहीं

बनती मतलब यह है कि धातु बनना भी बन्द होगया। अब बिना धातु के सर्व अंगों को तकलीफ पहुंची। दिमाग चक्कर खाने लगा हाथ पैर और दिनकी अपेक्षा काम न करने पर भी शिथिल हो गये। यहां तक कि खून की गर्दिश होना बन्द हो गया। अब सब घबराने लगे तब मेदे ने कहा कि, अब समझे कि नहीं मैं स्वार्थी हूं या निःस्वार्थी। तुम जब मेरी आज्ञासे काम करके मेरी रक्षा करते थे तो मैं भी आठों याम तुम्हारा हित करता रहता हूं। रात्रि में आप तो सब निन्द्रा में अचेत हो जाते हो परन्तु मैं तब भी तुमको खुराक पहुंचाने के निमित्त लगा ही रहता हूं। यह सुन सब ने अपने अपने काम आरम्भ किये और अपनी भूल पर पश्चाताप किया।

॥ तत्वार्थ ॥

अपने गुरु, पिता, माता और बड़े भाइयों की सेवा निस्वार्थ करनी चाहिये। सेवा ही से भगवान प्रसन्न होते हैं। नोंकरी व्यापार कृषि आदि किसी काम में बिना सेवाके धन नहीं मिलता है। इसी से कहते हैं कि, सेवा करे सो मेवा खाय।

———०※०———

नं० ३९ लालच बुरी बला है

किसी शहर में एक लालची महाजन रहता था। उसके पास धन बहुत था। परन्तु ज्यों २ वह वृद्ध होता जाता था त्यों त्यों उसकी चेष्टा भी बलिष्ट होती जाती थी।

एक दिन एक विद्वान महात्मा उस महाजन के पास आये

और महाजन को स्वभाव से ही लालची जानकर बोले कि हे महाजन आप अपनी मनोकामना हमसे पूर्ण कीजिये। यह सुन महाजन ने कहा कि, मुझे यह वरदान दो कि, जो कुछ वस्तु मैं अपने हाथ में लूं वह सब स्वर्ण की हो जाय तब महात्मा ने कहा कि, हे महाजन! यह तुम्हारी नादानी है, जिस धन को तुम वास्तविक सुख समझते हो वह दुख का हेतु है। जैसे बच्चे को पहिले खेल छोड़ कर विद्या अध्ययन करना महा दुख प्रतीत होता है परन्तु वह उल्टा होता है जिस विद्या को दुख समझता है वह सुख का हेतु होती है और जिन खेलों को पहिले सुख समझता है वह दुख रूप प्रतीत हो जाते हैं। ऐसे ही विषयों का त्यागना विष के समान मालूम होता है परन्तु यह भी उल्टा अर्थदायक है। देखो महाजन लोभ बड़ी बुरी बला है और कनक का मद कनक से भी अधिक होता है। यथा—

दोहा—कनक २ ते सौगुनी, मादकता अधिकाय।
जाय खाये बौरात है, जाइ पाये बौराय॥

महाजन ने महात्मा जी की बात पर कुछ ध्यान न दिया। अन्त में महात्मा जी एवमस्तु कह कर चल दिये।

अब महाजन जिस वस्तु को हाथ में लेता वही सोने की हो जाती यहां तक कि पहिनने के वस्त्र भी स्वर्ण के हो गये।

एक दिन महाजन ने अपनी लड़की की गुड़िया हाथ में ली वह भी सोने की होगई इस पर लड़की ने रोना शुरु किया महाजन ने प्यार पूर्वक लड़की को अपनी गोद में बैठा लिया तो

वह भी सोने की हो गई। और जो कुछ खाने पीने को मगोता वह भी सोना हो जाता यह गति देख कर महाजन घबड़ाया।

अब महात्मा की तलाश होने लगी जब महात्मा जी महाजन के पास पहुंच गये तो यों बोले कि, हमने तो तुमको पहिले ही समझाया था। परन्तु तुम तो धन के मद में अन्धे होगये सो हमारी शिक्षा पर किंचित् ध्यान न दिया। महाजन के बहुत कुछ विनय करने पर महात्मा ने उसको पूर्व जैसा बनाया और पुत्री को भी जिन्दा किया।

॥ तत्वार्थ ॥

सच है कुछ खोकर बुद्धि ठिकाने आती है। मनुष्य को भूल कर भी लालच न करना चाहिये क्योंकि धन तो अस्थिर है। सर्वदा कभी किसी पुरुष पर नहीं रहता इस कारण भगवन्नाम जपते रहो। भवसागर से पार होने को यही एक सुगम प्रयत्न है।

——०※०——

नं० ४० सोने की थाली

एक ग्राम के स्वामी ने एक घोर अत्याचार किया और उसमें ग्राम के मनुष्यों को साथ देने के लिये कहा। सब ने हर्ष पूर्वक उसकी सहायता की परन्तु एक साधारण पुरुष ने सहायता करना अंगीकार न किया। इस कारण उस दुष्ट स्वभाव ने उस दीन कृषक को अप्रसन्न हो कर तीन साल कारागार का दंड दिया।

उस कृषक के कर्तव्य से देवताओं ने प्रसन्न होकर एक मन्दिर में अकस्मात् एक स्वर्ण थाली डाली और गगन वाणी की कि यह स्वर्ण थाली किसी धर्मात्मा पुरुष को मिलनी चाहिये । यह घोषणा तमाम देश में फैल गई और आप पास के छोटे व बड़े धर्मात्मा स्वर्ण थाली के लोभ से इच्छा करके आये और बहुत से दीन दुखी कोढ़ी अपाहिज भी वहाँ पर आये और मन्दिर में उस स्वर्ण थाली को पड़ी देख सब लोभाधीन हो उत्कण्ठित हुए। उन में एक मनुष्य ने ज्यों थाली को उठाने के लिये अंगुली रक्खी त्योंही वह स्वर्ण थाली राँग की हो गई और जब तक अंगुली का पाप उसमें रहा तब तक राँग की रही और बाद में फिर सोने की हो गई इसी प्रकार सब मनुष्य निरास होकर अपने को पापी जान चले गये इस प्रकार उस थाली को पड़े हुए बारह माह व्यतीत हो गये ।

दूसरे साल में एक दिन मन्दिर के पुजारी ने निर्णय किया कि, इसको कोई उपकारी ही ले सकता है किन्तु उपकारी धन के लोभ से यहाँ आ नहीं सकते पर अपना काम तो करना ही चाहिये अस्तु पुजारी ने देश के उपकारियों के पास विनय पत्र भेजे ।

विनय पत्र को पढ़ते ही बहुत से परोपकारी हर्ष पूर्वक उस मन्दिर पर आये और वहाँ पड़े हुए दीन दुखियों को बहुत सा दान दिया और बाद में स्वर्ण थाली के पास गये परन्तु वह छूते ही राँग की हो गई निदान समस्त परोपकारी अपने को पापी

जान कर अपने २ घर को चले गये।

इसी प्रकार थाली को पड़े तीन साल के व्यतीत का अन्तिम दिन आया तभी वह साधारण कृषक जिसको निरपराध ही देस के राजा ने तीन साल का कारागार दिया था वहाँ आ निकला और वहां पर पड़े हुए दीन दुखियों को देख कर उस का हृदय दया से भर गया और पास जाकर उनकी सेवा की और भगवान से प्रार्थना करने लगा कि, हे भगवान मुझे ऐसी शक्ति प्रदान करो जिससे मैं इन दीनों का दुख निवारण करूं।

हे चराचर के स्वामी! देवादि देव मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान आप की जय हो। हे करुणासागर! इस दीन पर करुणा कीजिए। जब पुजारी ने कृषक को स्तुति करते देखा तो विचार किया कि निश्चय ही यह मनुष्य इस स्वर्ण थाली का भागी है। ऐसा विचार कर पुजारी ने उस कृपक को उस स्वर्णमय थाली को दिखा कर कहा कि यह थाली भगवान ने आप को दान दी है अस्तु, आप ऐसे दानी के दान को अंगी-कार कीजिए।

ज्योंही उसने थाली का ओर हाथ बढ़ाया त्योंही वह चौगुनी दमकने लगी। कृषक ने थाली को उठा लिया। काशि-राज भी यह समाचार सुन कर मन्दिर पर आए और क्रोध भरे वचन कहने लगे परन्तु पुजारी के समझाने से शान्त हो वह थाली कृषिक को ही दे दी।

वह कृषक बड़ा सदाचारी और धर्मज्ञ था। नित्य प्रति भगवान के गुणानुवाद करता था और स्वयं कथा पढ़ता और दूसरों को सुनाता सुनता था। जिसका फल ऐसा मिला।

॥ भावार्थ ॥

इसी प्रकार हमको भी नित्य प्रति सब काम छोड़ कर घंटा दो घंटा भगवत भजन करना चाहिए जिससे अपार संसार से पार हो और चाहे भाई हो या कोई नातेदार हो परन्तु वह अत्याचारी हो तो ऐसे की भूल कर भी सहायता न करे, यह नीति है। किसी ने कहा भी है कि—

न्यायार्थ अपने बन्धु को भी दण्ड देना धर्म है।

———o❀o———

नं० ४१ गुरुभक्ति

प्राचीन समय में भारतवर्ष में आयोदधौम्य नाम के ऋषी थे। उनके आश्रम में कई शिष्य विद्याध्ययन किया करते थे। उनमें आरुणि नाम का एक शिष्य था।

एक दिन वर्षा अधिक हुई और गुरू के खेत का जल बाहर निकलने लगा तब गुरू ने कहा कि बेटा आरुणि तुम जा कर खेत की मेंढ़ बांधो नहीं तो सारा जल बाहर निकल जायगा। आरुणि आज्ञा पाकर खेत की मेंढ़ बांधने लगा परन्तु जल का जोर होने तथा गीली मिट्टी के कारण वह न रोक सका। पुनि आरुणि ने विचार किया कि गुरू से किस मुंह से कहूँगा, कि मैं खेत की मेंढ़ न बांध सका, अस्तु आप ही वहां लेट गया

ऐसा करने से गुरू की आज्ञा का पालन हुआ और जल रुक गया।

इधर जब कशिशव-सुत अस्त हो गये और आरुणि घर न पहुंचा तो गुरुजी ने और शिष्यों से उसका पता पूछा।

शिष्यगण—महर्षि प्रातः काल आपने उसे मेंढ बांधने को भेजा था तभी से नहीं आया है।

महर्षि—अचम्भित होकर, "अभी तक नहीं आया" चलो चल कर देखें किस संकट में फंस गया है।

जब आयोदधौम्य खेत के पास जाकर पुकारने लगे।

महर्षि—बेटा आरुणि ! तुम कहां हो ?

महर्षि की टेर सुन कर आरुणि गुरू के पास आया और प्रणाम कर सन्मुख खड़ा हो गया।

महर्षि—शिष्य अब तक तुम कहां थे ?

आरुणि—भगवन, जब मैं खेत का पानी किसी तरह न रोक सका तब स्वयं ही मेंढ़ बन गया, अब आपकी मेरे योग्य क्या आज्ञा है। दास सेवा को सन्नध खड़ा है।

महर्षि—बेटा मैं तुम्हारी सेवा से बहुत ही प्रसन्न चित्त हूं। तुम्हारा कल्याण हो और शास्त्र में पूर्ण विद्वान हो, मैं अब तुम्हारा नाम उद्दालक रखता हूं। इस प्रकार चौदह विद्याओं में निधान हो आरुणि ने ग्रहस्थाश्रम में प्रवेश किया और गुरु सेवा के फल से प्रधान सुख का भोक्ता हुआ।

नं० ४२ गुरु भक्ती

उन्हीं गुरु आचार्योद्धौम्य के दूसरे शिष्य उपमन्यु थे। जो गुरु की सेवा के प्रभाव से अन्त में शास्त्र के पूर्ण ज्ञाता हुए।

एक दिन महर्षि ने कहा कि मैं तुम को आज से गौ चराने का काम देता हूं तुम बड़ी मिहनत के साथ रक्षा करना उपमन्यु गुरु की आज्ञा शिर धारण करके गौओं को चराता और सन्ध्या को आश्रम में जाकर हाथ जोड़ खड़ा हो जाता इसी प्रकार जब कुछ दिन व्यतीत हो गये तो गुरु ने विचार किया कि उपमन्यु, नित्य प्रति मोटा होता चला जाता है। इसका क्या कारण है आश्चर्य युक्त होकर बोले।

महर्षि—प्रिय वत्स तुम्हारी ऐसी तन्दुरुस्ती का प्रधान कारण क्या है।

उपमन्यु—नाथ भिक्षा में जो कुछ एकत्रित होता है उसी से अपनी उदर पूर्ती करता हूं और तन्दुरुस्त हूं।

महर्षि—वत्स यह तो तुम धर्म के विरुद्ध काम करते हो क्यों कि हमको बिना दिखलाये ही खा लिया करते हो। देख विद्वान कहते हैं कि—

गुरु से कपट मित्र से चोरी। कै होय निर्धन कै होय कोढ़ी॥

यह सुन उपमन्यु लज्जित हो गया और नित्य प्रति जो भिक्षा मांग कर लाता गुरू के सामने रख देता गुरू उस में से उपमन्यु को कुछ न देते तो भी उपमन्यु मोटा ही होता जाता तब गुरु ने फिर आश्चर्य में आकर उससे पूछा।

महर्षि—प्रिय वत्स भिक्षा का अन्न तो मेरे पास रहता है। तो भी तुम मोटे होते जाते हो अब तुम क्या खाते हो।

उपमन्यु—हे नाथ एक बार तुम्हारे लिये भिक्षा लाता हूं फिर दुबारा अपने लिये लाता हूं और उसी को खाता हूं।

महर्षि—यह तो तुम स्वार्थ का काम करते हो क्योंकि दूसरों की भिक्षा मारी जाती है। इसलिये ऐसा मत करो।

उपमन्यु—महाराज, जो आज्ञा

अब उपमन्यु एक बार ही भिक्षा मागने जाता तिसको भी गुरू रख लेते थे। बेचारा गऊ चराता तिस पर भी हृष्ट पुष्ट रहता। यह देख कर महर्षि ने फिर पूछा।

महर्षि—न तो तुम दुबारा भिक्षा मागते हो और न मैं ही देता हूं तिस पर भी तुम हृष्ट पुष्ट हो सो क्यों?

उपमन्यु—दयानाथ अब मैं गौओं का दूध पीता हूं।

महर्षि—यह तो तुम अधर्म करते हो क्योंकि विना हमारी आज्ञा के दूध पीते हो, आयन्दा ऐसा न करना।

उपमन्यु लज्जित हो गया दिन भर गौ चराता परन्तु फिर भी न लटा यह देख मुनि महा अचिम्भत होकर बोले।

महर्षि—वत्स अब तुम न तो दुबारा भिक्षा लाते हो न दूध पीते हो तो भी तन्दुरुस्त हो सो क्या कारण है।

उपमन्यु—नाथ बछड़ों के दूध पीते समय मुख से जो फेन गिरता है आज कल उसी को सन्तोष से खाता हूं।

महर्षि—राम २ बेटा तुम बहुत बुरा काम करते हो क्योंकि दूसरों का हक खाते हो दूसरों का हक खाना महा पाप है वे तुझ पर दया करके अधिक फेन टपकाते होंगे और आप भूखे रह जाते होंगे इस हेतु कदापि भी ऐसा न करना।

उपमन्यु—जो आज्ञा भगवन।

अब विचारे के भोजन के सभी मार्ग रुक गये, न भिक्षा मांग सकता न दूध पी सकता और न फेन ही खाता तो भी गुरू की गोएँ चराता और जब क्षुधा अधिक पीड़ित करती तो वृक्षों के पत्ते खाकर उदर पूर्ती करता। ऐसा करते २ जब कुछ दिन व्यतीत हो गये तो बेचारा उपमन्यु अन्धा हो गया और लौटते समय कुआ में गिर पड़ा जब सन्ध्या हो गई और उपमन्यु आश्रम पर न पहुंचा तो गुरू को बड़ी चिन्ता हुई और अपने शिष्यों से बोले कि आज उपमन्यु नहीं आया न जाने क्रुद्ध होकर कहीं रुक गया है अस्तु चलकर पता लगाना चाहिए। वन में जाकर पुकार ने लगे बेटा तुम कहाँ हो। उपमन्यु ने कुआ में से आवाज दी कि, महोदधि मैं आक के पत्ते खाने से अन्धा होने के कारण कुआ में गिर पड़ा हूं यह सुन महर्षि बोले।

महर्षि—अच्छा अश्विनी कुमारों की विनय कर तुम ठीक हो जाओगे। यह सुन उपमन्यु ने अश्विनी कुमारों की स्तुति की। तब वे अश्विनी कुमार पास आकर बोले

कि, हम तुम्हारी स्तुति से प्रसन्न हैं और तेरे लिये यह मिठाई लाये हैं इसे तू खाले।

उपमन्यु—चाहे प्राण चले जाँय परन्तु धर्म को नहीं छोड़ सकता मैं बिना गुरु के अर्पण किये कदापि मिठाई नहीं खा सकता।

अश्विनी कुमार—तुम गलती पर हो एक बार हमारे इसी तरह मिठाई देने पर आयोदधौम्य ने बिना गुरु आज्ञा के खाली थी इसी लिये तुम भी ऐसा ही करो।

उपमन्यु—चाहे कुछ हो मैं तो ऐसा नहीं कर सकता।

अश्विनी कुमार—हम तुम्हारी गुरु भक्ति को देख कर प्रसन्न हैं तेरा सर्व कल्याण हो और आंख भी अच्छी हो जायगी।

यह कह अन्तरध्यान हो गये और उपमन्यु ने कूआ से निकल गुरु के पास जा सारा वृतान्त सुनाया।

महर्षि—अश्विनी कुमारों ने जैसा कहा है सो पूर्ण होगा और तू वेद ज्ञाता, शास्त्रार्थी धर्मावलम्बी और धुरन्धर पंडित होगा। जा मेरी यही आशीष है। विद्वान उपमन्यु ने भी गृहस्थाश्रम को प्रवेश किया।

महर्षि आयोदधौम्य इसी प्रकार अपने शिष्यों की परीक्षा किया करते थे। धन्य है ऐसे गुरु और शिष्य धन्य ऐसा देश जिस में उनके जन्म हुए थे।

॥ भावार्थ ॥

भूत और वर्तमान काल के गुरु शिष्यों की समता में

राई पर्वत का अन्तर है । पहिले जैसे महर्षियों की विद्या प्रचार से भारत उन्नति शिखर पर था तो अब की विद्या से नाश होता जाता है । यदि ऐसा ही रहा तो भारत जैसा अब विद्यमान है वैसा भी न रहेगा ।

नं० ४३ गूढ़ार्थी सम्वाद

एक शिष्य ने अपने गुरू से प्रश्न किया कि, हे दयानिधि इस संसार में—

जल से गहरो कहा, कहा पृथ्वी से भारी ;
कहा अग्नि से तेज, कहा काजल से कारौ ।

गुरु—अपने शिष्य से इस प्रकार उत्तर देते हुए बोले—

जल से गहरौ ज्ञान, पाप पृथ्वी से भारी ।
क्रोध अग्नि से तेज, कायरी काजल कारी ॥

शिष्य—सो कैसे महाराज ।

गुरु बोले—हे शिष्य संसारी जन रस्सी द्वारा पृथ्वी तल (कूआ) से जल को निकाल लेते हैं परन्तु आत्मा एक है या अनेक और मैं क्या हूं अथवा परमार्थ ज्ञान की प्राप्ति किसी विरले ही को कठिनता से होती है । अर्थात् ज्ञान कूप से भी अधिक गहरा है और जल में निवास भगवान नारायन का है जल को नारा भी कहते हैं अस्तु नारा (जल) है अयन (घर) जिसको सो नारायन की भी प्राप्ति ज्ञान द्वारा होती है और आत्म ज्ञान होना पर्वत शिखर पर कूप खोदने से भी

कठिन है इसी कारण ज्ञान को जल से गहरा कहा है।

पाप पृथ्वी से भारी यों कहा जाता है कि, बड़े २ पर्वत समुद्रादि चर अचर प्राणियों के मय भार को शेष नाग और दिग्गज धारण करते हैं तो भी बोझ का भार दुखकारी नहीं है। परन्तु जब संसारी जीव अत्यन्त दुष्कर्म करते हैं तो उन पापों के भार को न पृथ्वी ही थांटती है और न शेष तथा दिग्गज ही सब कम्पायमान हो जाते हैं और पृथ्वी भी हिलने लगती है। यहां तक कि सब जाकर भगवान से प्रार्थना करते हैं तब वे अविनाशी नर तन धारण कर के पृथ्वी के भार का निवारण करते हैं। तब शेष जी ज्यों के त्यों पृथ्वी भार को सहन करते हैं। आज कल तो यह बात प्रत्यक्ष मालूम पड़ती है परन्तु प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। जैसे सतयुग, त्रेतादि युगों में इसी पृथ्वी के भार से शेष नाग कभी२ विचलित होते थे परन्तु कलि में उसी पृथ्वी के भार से शेष नाग बार २ विचलित होते हैं। इसका यही कारण है कि, हमारे पूर्वज सदाचरणी थे परन्तु अब हम दुराचरणी हो कर पाप कमाते है जिसके भार से सब कम्पति हो जाते हैं इसी से पाप को पृथ्वी से भारी बतलाया गया है।

क्रोध अग्नी से तेज यों है कि, अग्नी के जले की दवा अनेक हैं परन्तु क्रोध के जले की दवा कोई नहीं। हां यदि शान्ती को ग्रहण किया जाय तो उत्तम दवा है। क्रोध हृदय

के अन्दर एक छिपी अग्नी है जो विचार रूपी पवन के लगते ही धधक उठती है और विवेक बुद्धि आदि रक्त मांस को नष्ट कर देती है इसलिये क्रोध अग्नी से तेज है।

कायरी को काजल से भी काला इस कारण बतलाया गया है कि, काजल का धब्बा साबुन आदि से रजक के घर छूट सकता है परन्तु बदन पर कायरी का धब्बा लगने से कोटि उपाय करने पर भी नहीं छूटता तुलसीदास जी ने भी कहा है कि—

दोहा—तुलसी निज कीरति चहहिं, पर कीरति को खोय।
तिनके मुंह मसि लागि है, मिटिहि न मरि है धोय॥

इसी कारण कायरी को काजल से भी काला बतलाया गया है शिष्य यह सम्वाद सुन कर हर्षित हुआ।

——:०:——

४४ हिन्दू गऊ रक्षक हैं या भक्षक

सतयुग, त्रेता, द्वापर में गऊ की बड़ी भारी मानता थी। यहां तक कि राजा भी गऊ पालक थे। गऊ ब्राह्मणों को पृथ्वी के दो खम्भ बतलाते थे परन्तु कलियुग में ये दोनों ही गिर गये पहिले दोनों की महिमा अपार थी सज्जनों निम्नलिखित दृष्टान्त को समता करके पूर्ण पता चल जायगा कि हिन्दू गऊ रक्षक हैं या भक्षक।

सतयुग में बौला नाम की एक गऊ थी। जिसके तीन पैर थे एक ब्राह्मण उसकी सेवा करता था। वह बौला को

अपना प्राण ही समझता था। उस गऊ के एक बछड़ा था। और वह नन्दन वन में चरने जाया करती थी अति हृष्ट पुष्ट थी।

एक दिन उसके शरीर को देखकर और गऊओं ने कहा कि, ऐसी कौन सी खुराक खाती है जिससे ऐसी हृष्ट पुष्ट है बौला ने कहा कि, मैं नन्दन वन की हरी २ घास सन्तोष से खाती हूं। यह सुन कर और २ भी गऊ बोलीं कि, कल हम भी तुम्हारे साथ चलेंगी बौला ने स्वीकार कर लिया।

दूसरे दिन गऊ अपने बछड़ा को क्षीर पिला कर साथ में और गौओं को लेकर नन्दन वन में चरने गई। कुछ देर पश्चात एक सिंह की गर्जना सुनाई दी। साथ की गौ तो भय भीत होकर भाग गई परन्तु बेचारी बौला पर न भागा गया। इतने में सिंह पास आगया तब बौला ने कहा कि, हे मृगराज मैं अपने बछड़ा को क्षीर पिला कर आपके पास आजाऊंगी परन्तु अब आप मुझे छोड़ दीजिये नहीं तो वह मेरा प्यारा बछड़ा और पालक (ब्राह्मण) वियोग में प्राण त्याग देंगे यह सुन सिंह ने कहा कि, ऐसा इस संसार में कौन होगा जो एक बार जान बचने पर फिर मरने आजाय जिस में भी तू स्त्री जाति है बता मैं तेरा कैसे विश्वास करूं यदि अब मैं छोड़ दूंगा तो तू मरने के लिये फिर कदापि न आयगी। यह सुन बौला ने कहा कि, यदि मैं न आऊं तो मुझको निम्न-लिखित दोष हों। दो गांवों के एक कुआ को आटने से जो

दोष होता हो दूसरे ब्रह्म हत्या का दोष हिंसा का दोष आदि २ समस्त दोष मुझको लगें। यह बात सुनकर सिंह को विश्वास हो गया और उसे जाने की आज्ञा दे दी।

धौला वहां से भाग कर अपने वत्स के पास आई जिस के नेत्रों से अश्रु धारा वह रही थी। बछड़ा अपनी माता की यह दशा देख कर बोला कि हे जननी तुम क्यों रोती हो। ऐसा कौन सा भारी संकट आकर पड़ा है। धौला बोली कि वत्स तुम क्षीर पी लो आज मेरा अखीर हो जायगा। तब बछड़ा ने कहा कि मैं क्षीर तभी पीऊंगा जब तुम सारा वृतान्त ठीक २ बतला दोगी। गऊ यह सुन कर बहुत रोई और अपने प्रिय बछड़ा को सारा हाल बतला दिया, तब बछड़ा बोला कि हे जननी! तेरी खातिर यदि मेरे प्राण चले जांयगे तो भी तुझसे उऋण नहीं हो सकता हूं। अस्तु, मैं सिंह के पास जाता हूं पुत्र का माता के प्रति यही कर्तव्य है जिस पुत्र के सामने माता पिता दुखी हों वह पुत्र अवश्य ही नरक का अधिकारी होता है यह सुन गऊ ने अत्यन्त शोक किया और कहा कि बेटा मैं ही अपना जीवन व्यतीत करूंगी। परन्तु बछड़ा ने एक भी न मानी और आप आगे २ चल दिया। सिंह के पास जाकर दोनों खड़े हो गये तब धौला ने कहा कि, हे मृगराज भक्षण करो परन्तु सिंह उसके सत को देख बोला कि मुझ पर भक्षण नहीं की जाती है इसी प्रकार वाद विवाद में कई दिन बीत गये गौ भक्षण को कहती है परन्तु वह नहीं भक्षण करता

बछड़ा भी मरने को तैयार है ऐसे सत से भगवान का सिंहासन हिला तब भगवान ने नारद जी को सन्देशा लेने को भेजा। नारद जी ने वहां आकर सारा दृश्य देखा और जाकर भगवान से कहा भगवान भी देवताओं के सब विमान लेकर आये और गऊ तथा सिंह के कहने से अपने२ साथियों समेत सब आलम के स्वर्ग को गये जब भारत के पशु पक्षी भी सतधारी थे तभी तो देश उन्नति के शिखर पर था क्योंकि पशु ही जब सतधारी थे तो मनुष्यों का तो कहना ही क्या। कलि में गऊ कसाई के हाथ बेची जाती हैं और दिन रात उनकी गर्दन पर कटार चलाई जाती है अब बतलाइये इस तरह गऊ कटने से हिंदू गऊ रक्षक हैं या भक्षक। गऊ माता कह कर पुकारी जाती हैं। हाय शोक है माता ही की गर्दन पर कटार चलाई जाती है। हिंदुओं के गऊ बेचने ही से ऐसा होता है। जब हिंदू अपनी गऊ को कसाई के हाथ बेचकर विक्रय से उदर पूर्ती करते हैं तो गऊ भक्षक ही हुए।

नं० ४५ हिन्दू गऊ रक्षक हैं या भक्षक।

एक दिन महाराज दिलीप ने विचार किया कि मेरी वृद्ध अवस्था आगई परन्तु पुत्र एक भी नहीं है हाय पुत्र के बिना भानु कुली बिलकुल नष्ट हो जायगी ऐसा विचार कर के गुरु वशिष्ट के पास गये और अपनी हृदय चिन्ता का वर्णन किया।

गुरु ने कहा कि राजन् एक दिन कामधेनु आकाश मार्ग से चली आरही थी। तुमने उसके लिये हाथ नहीं जोड़े थे अस्तु उनके क्रोधित हो श्राप दे दिया था कि तुम सन्तान रहित हो इस हेतु तुम निःसन्तान हो राजा ने हाथ जोड़ कर कहा कि उसके प्रसन्न करने का भी कोई उपाय है तब गुरु वशिष्ट ने कहा कि, तुम कामधेनु की पुत्री नन्दिनी की सेवा करो वह मेरे आश्रम में बंधी है इसी की कृपा से तुम्हारा कल्याण हो जायगा। और मन वांच्छित फल प्राप्त होगा। राजा उसी दिन से नन्दिनी की सेवा करने लगे जब प्रात काल चराने जाते तो रानी भी कुछ दूर उनके साथ जाती शाम को स्थनों से भरी नन्दिनी हुंकार मारती हुई चली आती थी। इस प्रकार सेवा करतेर बहुत दिन व्यतीत हो गये तब नन्दिनी ने राजा की परीक्षा लेनी चाही तो चरतीर सरयू के एक खार में पहुंच गई। राजा सामने पर्वत के एक दृश्य को देख रहे थे कि, अचानक नन्दिनी की दुख भरी आवाज सुनाई दी राजा ने देखा तो सिंह ने नन्दिनी को दबा रक्खा है। यह देख राजा ने ज्यों ही तरकस की थैली पर हाथ डाला त्यों ही हाथ चिपक गये और राजा आश्चर्य में पड़ गये।

सिंह बोला कि, मैं महादेव जी की आज्ञानुसार इस देवदारु के वृक्ष की रक्षा करता हूं और यहाँ जो कोई पशु आता है वही मेरा चारा है अस्तु मैं तुम्हारी गऊ को नहीं छोड़ सकता आप अब अपने घर जाइये। तब राजा ने कहा कि, मैं गुरु से किस मुख से कहूंगा कि नन्दिनी की रक्षा न कर

सका यह मेरे गुरू की गऊ है। तब सिंह ने कहा कि इसके बदले में सहस्र गऊ देकर अपने गुरू को मना लेना यह सुन राजा ने कहा कि तुम नन्दिनी के बदले में मुझे भक्षण कीजिये सिंह ने अस्वीकार किया किन्तु राजा ने सिंह को बातों में हराकर इस पर निश्चित किया कि नन्दिनी के बदले में मुझे भक्षण करो। बाद में राजा का हाथ तरकस से छूट गया और सिंह के आगे नीचे को मुख कर बैठ गया राजा अपने हृदय में यह सोच ही रहा था कि सिंह मेरे ऊपर झपटने ही वाला है इतने ही में आकाश से फूलों की वर्षा हुई। नन्दिनी ने कहा कि बेटा मैंने तुम्हारी परीक्षा ली थी यह सब मेरी ही रचना थी। सिंह को क्या सामर्थ है जो मेरी ओर दृष्टि उठाकर देखे जा मैं तेरी सेवा से प्रसन्न हूं, तेरी मनोकामना पूरण हो। अन्त में राजा अपने घर आये और उसी दिन से रानी के गर्भ रह गया और समय पर महाराज अज हुए। अब विचारिये कि पहिले राजा महाराजा भी गऊ की सेवा में अपने प्राण तक देने को तैयार हो जाते थे।

परन्तु आजकल के हिन्दू अधिकतर संख्या में इसके विपरीत हैं। देखिये भगवान को भी गऊ-द्विज-हितकारी कहते हैं परन्तु गऊ द्विज के हम अहितकारी होते जाते हैं तो ऐसे कर्म से ईश्वर क्यों न क्रोधित होंगे, अवश्य होंगे।

———०———

नं० ४६ धर्म के काम में विलम्ब न करो

जिस समय रावण के नाभि में रामचन्द्र जी महाराज ने बान मार दिया और वह पृथ्वी पर गिर पड़ा तब रामचन्द्र भगवानजी ने लक्षमण जी से कहा कि तुम रावण से राज नीति सीख लो। लक्षमण जी रावण के शिर की ओर खड़े हो कर बोले कि हे रावण तुम हमको राजनीति बतलाइये। परन्तु रावण न बोला तब लक्षमण जी रामचन्द्र जी के पास आकर बोले कि नाथ वह तो बोला नहीं है तब भगवान ने पूछा कि तुम किस ओर खड़े हुए थे लक्षमण जी ने कहा कि शिर की तरफ। रामचन्द्र जी बोले कि तुम ने भूल की क्योंकि एक तो हम क्षत्री और वह ब्राह्मण दूसरे जिससे ज्ञान प्राप्त करना होता है उस के पैरों में खड़ा होना पड़ता है यह नीति है अस्तु तुम पैरों की ओर खड़े होकर नीति पूछना।

लक्षमण ने रावण के चरणों की ओर खड़े होकर कहा कि हे रावण हमको राजनीति सिखला दीजिये। रावण यह सुनते ही बैठा हो गया और बोला कि तुम पहिले से आते तो मैं राजनीति सिखलाता परन्तु अबतो मैं शिथिल हूं जैसी सामर्थ है सुनाता हूं सुनो।

हे लक्षमण जी मैंने विचार किया था कि लंका के पास चार सौ कोस विस्तार वाला खारी समुद्र है मैं इसको मीठा कर दूंगा और ज चाहूंगा तभी कर लूंगा (२) दूसरे यह

सोचा था कि स्वर्णमयी लंका है इसमें सुगन्ध बसा दूंगा । (३) तीसरे यह सोचा था कि पिता के सामने पुत्र न मरने दूंगा यमराज तथा ब्रह्मा से जबरदस्ती यह काम करा डालूंगा, (४) चौथे यह सोचा कि बड़े २ मुनीश्वर उग्र तप करते हैं तो भी स्वर्ग नहीं मिलता अस्तु स्वर्ग को सीढ़ी बना दूंगा और आशा को पुरानी कर दूंगा तथा काल को अधिकार ही में रक्खूंगा । परन्तु मैं इन धर्म के कामों को अभी तक न कर सका और मरने का समय आन पहुंचा, तृष्णा ने मुझे ही पुराना कर दिया और काल ने भी मुझ ही पर अधिकार कर लिया और जो अधर्म काम जगतमाता जानकी जी के हरने का था तिसके करने में मैंने विलम्ब न किया तिसका परिणाम यह निकला कि सपरिवार नष्ट हो ही गया सो हे लक्ष्मण जी एक नीति तो यही है कि धर्म के काम में विलम्ब न करे और अधर्म के काम में सलाह ले यदि कोई सलाह देभी दे तो टालता ही रहे हाय मैंने त्रिभुवन पति श्री रामचन्द्र जी से द्रोह किया । हे लक्ष्मण जी धर्म के काम को—

दोहा—कालि करै सो आजु करि, आजु करै सो अब ।
पल में परलै होयगी, बहुरि करोगे कब ॥

अस्तु धर्म के काम में विलम्ब न करे और मैंने जो चार बात विचारी थीं सो कल्पना मात्र हो गई ।

——※——

४७ मनोइच्छा नास्ती दैवी इच्छा वर्तते ।

रावण ने कहा कि मन की जो कल्पना होती है वह नाशवान् होती है, एक राजा के कन्या उत्पन्न हुई थी। राजा ने एक ब्राह्मण को बुलाया। ब्राह्मण ने कन्या की हस्तरेखा देख कर कहा कि, राजन् इसके वरने वाला राजा होगा। राजा तो होना ही चाहिए क्योंकि राजपुत्री है किन्तु वह चक्रवर्ती राजा होगा इतने ही में ब्राह्मण के उदर में विचार उठा कि यदि किसी तरह यह कन्या मुझे मिल जाय तो मैं ही चक्रवर्ती राजा हो जाऊंगा। यह विचार कर राजा से कहा कि नाथ इसके वरने वाला तो राजा होगा परन्तु यह कन्या आपको दुखदाई होगी इस हेतु इसको एक सन्दूक में वन्द करके नदी में छोड़ दीजिये, क्योंकि इसका मोह अभी तो दुख न देगा राजा ने ऐसा ही किया।

अब इधर वे ब्राह्मण भी दूर जा नदी के तीर बैठ गये परन्तु बीच में दैवयोग से एक राजा ने आकर अपने नौकरों से उसे निकलवा लिया और वन में से एक रीछ पकड़ कर सन्दूक में वन्द कर दिया कन्या को अपने घर ले गया। इधर जब सन्दूक उस ब्राह्मण के तीर पहुंचा तो ब्राह्मण फूला न समाया और सन्दूक को लेकर घर पहुंचा और मन ही मन में चक्रवर्ती हो गया जब घर में जाकर सन्दूक को खोला तो रीछ ने निकल उसे मार दिया सो हे लक्ष्मण जी मनोइच्छा नास्ती दैवी इच्छा वर्तते।

मैंने जो मन में कल्पना की थी सो सब का नाश हुआ और दैव की जो इच्छा थी सो वर्ती वस में अब इतनी ही शिक्षा दे सकता हूँ अब आप जाइये। लक्ष्मण जी वहां से फिर राम जी के पास आ गये और सारा हाल बतला दिया।

——०——
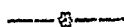
४८ जिस वस्तु का जो जितना रसज्ञ होगा वह उसे उतनी ही सरस होगी।

यह नियम है कि पदार्थ चाहे एक ही हो किन्तु उसका जो मनुष्य जितना रसज्ञ होगा उसे वह उतनी ही सरस मालूम पड़ेगी और जो रस को जानता ही नहीं उसे तो रस मय पदार्थ भी सरस प्रतीत नहीं होता जैसे ब्रह्म सर्वत्र ही है परन्तु उसके परमानन्द की सबको समान अनुभूति नहीं होती उसकी स्फुट प्रतीति तो भावुक भक्त गण तथा आत्माराम मुनियों को ही होती है।

एक चित्रकार ने एक चित्र बना कर तैयार किया और उसे हर्ष पूर्वक राज दरबार में ले गया किन्तु राजा को उसे देख कर विशेष प्रसन्नता न हुई तथापि अपने वैभव की ओर ख्याल करके धनकोपाधिकारी को हुक्म दिया कि इसे एक हजार रुपये पुरस्कार में दे दीजिये यह सुन चित्रकार ने राजा को चित्र न दिया और वापिस ले कर अपने घर आ रहा था। मार्ग में राजा का एक कर्मचारी मिला और चित्र के देखने को

लालायित हुआ परन्तु चित्रकार ने यह सोच कर कि जब राजा तक प्रजा उसे चित्र न दिखाया परन्तु कर्मचारी के बार २ आग्रह पूर्वक कहने से चित्र दिखला दिया। वह चित्र को देखते ही दंग रह गया और कहने लगा कि आपकी हस्त कौशल को कोटि बार धन्यवाद है। मैं इसे लेना चाहता हूं परन्तु मेरे पास एक धोती के कुछ नहीं अस्तु एक लंगोटी अर धोती फाड़ कर आपने पहिन ली और सब चित्रकार को देदी, चित्रकार भी हर्ष पूर्वक ले गया।

इधर जब राजा ने इस समाचार को सुना तो क्रोधित हो उस चित्रकार को बुलाया और कहा कि तू ने क्या समझ कर हमारा अनादर किया ;जो चित्र एक हज़ार रुपये में न देकर फटी धोती में ही देदिया। तब चित्रकार हाथ जोड़कर बोला कि हे स्वामी आप चित्र के महत्व अर्थात् कला कौशल को नहीं समझे। परन्तु अपने वैभव के ख्याल से उदास चित्त हो कर एक हज़ार रुपये दे रहे थे। तथापि आपके कर्मचारी ने इसके महत्व को समझा है जो उस समय इसके पास जो कुछ था हर्ष पूर्वक मुझे दे दिया। मैंने भी आपके एक हज़ार रुपयों से इसके प्रसन्न चित्त अल्प पुरस्कार को अधिक समझ कर स्वीकार लिया। राजा यह सुन कर लज्जित हो गया और उसे पुरस्कार दे छोड़ दिया

नं० ४९ संत और असंत

विज्ञानी सन्त उसी को कह सकते हैं जो सांसारिक सुखों को तृण के समान त्याग दे और लोभ दर्प भय तथा आमर्ष रहित हो अथवा विषय प्रलपट हो और शीलादि गुणों का निधान हो। पराये दुःख में दुखी और सुख में सुखी हो जिसका न कोई वैरी हो और न प्रिय हो समत्व भावुक तथा खल जनों के बुराई करने पर भी उनको भलाई करे जैसे कहा है कि—

दोहा०—तुलसी सन्त सुअम्ब तरु, फूल फलहिं पर हेत ।
इतते वे पाहन हने, उतते वे फल देत ॥

सन्त और असन्त को ऐसी करनी है जैसी कुठार की चदन के साथ, कुठार के काटने पर भी चंदन अपने गुण से उसकी धार में सुगंध बसा देता है इसका फल यह होता है कि वही चंदन फिर देवताओं के शिर पर चढ़ाया जाता है और कुठार की यह गति होती है कि आग में तपा कर तथा निहाई पर रख कर घन की चोटों से कूटा जाता है। संत जनों का स्वभाव ऐसा होता है कि बुराई करने पर भलाई करते हैं। इस पर निम्नलिखित दृष्टान्त प्रमाण देकर संत के स्वभाव की पुष्टि करता है।

एक नगर में एक महा दरिद्री ब्राह्मण रहता था यहाँ

तक कि उसको पेट पूर्ती के लिये भिक्षा भी कम मिलती थी और वह ब्राह्मण के वेद कथित कर्मों से रहित था विद्या तो बिल्कुल ही न पढ़ा था । इस प्रकार की दरिद्रता के दुख से दुखी था कुछ दिन पश्चात उसके भाग्य ने पल्टा खाया तो स्वयं ही उसके हृदय में विचार उत्पन्न हुआ कि अब मुझको राजा के घर जाय भिक्षा मांगनी चाहिए ऐसा निश्चय कर अपनी पत्नी से कुछ भोजन का सामान कराके और घर का प्रबन्ध करके चल दिया ।

चलते २ मार्ग में उसे एक सुन्दर तालाव मिला उस का पानी निर्मल था ब्राह्मण ऐसे स्थान को देख कर वहीं पर स्नान करके भोजन के लिये बैठा तो सामने की बामी से एक काला भुजंग निकला ब्राह्मण उसे देखकर भयभीत हुआ ब्राह्मण को भयभीत देख सर्प ने कहा कि आप निर्भय हो जाइये मैं तुमको न काटूंगा किन्तु यह बतलाइये कि आपने कहां को और किस हेतु प्रस्थान किया है । ब्राह्मण बोला कि मैं महा दीन हूं अस्तु राजा के द्वार भिक्षा की चेष्टा कर ने जाता हूं । नाग बोला कि तुम को इस प्रकार धन नहीं मिलेगा हम बतावें सो प्रयत्न करना ।

सर्प बोला कि प्रथम तुमको राज मंत्री मिलेगा तुम उससे कहना कि मैं ज्योतिषी ब्राह्मण हूं और राजा के एक प्रश्न का उत्तर एक लाख के लिये देता हूं फिर वह तुमको राजा के पास ले जायगा फिर तुम को राजा सम्वत् के विषय

में पूछेगा तब तुम कह देना कि राजन् इस साल में अधिक वर्षा होगी जिससे मनुष्य पशु और पक्षी सब दुख पावेंगे।

जब ब्राह्मण देवता राजा के नगर में पहुंचा तो प्रथम उसे मंत्री ही मिला मन्त्री ने पूछा तुम कौन हो। ब्राह्मण ने कहा कि मैं ज्योतिषी पंडित हूं और केवल राजा के एक ही प्रश्न का उत्तर एक साल को देता हूं। मंत्री ने उसे अपने मकान पर आदर पूर्वक ठहराया और सवेरा होते ही टायम पर ब्राह्मण को राज दरबार में ले गया और राजा को सब वृतान्त सुनाया तो राजा ने वही नाग वाला प्रश्न पूछा ब्राह्मण ने प्रसन्न हो नाग ही वाला उत्तर बतला दिया।

राजा के दरबार में ब्राह्मण चार माह तक रहा अन्त में वह प्रश्न वर्षा का ठीक निकला तो राजा ने ब्राह्मण को बहुत सा धन देकर विदा किया और कहा कि महाराज कुछ और आज्ञा है तब उस असंत ब्राह्मण ने यह शोच कर कि इस प्रश्न को नाग किसी और को भी बतला देगा तो मेरी रोटी मारी जायगी अस्तु उसे मार देना चाहिये यह सोच राजा से कहा कि महाराज सौ कहार मेरे साथ भेज दीजिये राजा ने ऐसा ही किया।

ब्राह्मण सौ कहारों को उसी तालाव पर लाया और संत सर्प की बामी में पानी डलवाने लगा और पुन बामी को पानी से भरवा कर अपने घर आया और आनन्द पूर्वक दिन व्यतीत करने लगा।

जब दूसरी साल प्रारम्भ हुई तो फिर पहिले की तरह ही उसी तालाब में स्नान करके भोजन को बैठा तभी वही सर्प बामी में से निकल कर दिखलाई दिया ब्राह्मण उसे देख कर बहुत भयभीत हुआ कि मैं तो इसको मरा जान कर चला गया था किन्तु यह तो जिन्दा है अस्तु अब क्रोधित होकर मुझे न छोड़ेगा। नाग उसे बहुत डरायमान् जान कर बोला कि आप निर्भय हो जाइये मैं आपसे कुछ न कहूंगा।

नाग ने कहा कि अब आपने कहां को प्रस्थान किया है ब्राह्मण बोला कि उसी राजा के यहां जाता हूं, तब नाग ने कहा कि अबकी बार क्या बतलाओगे, ब्राह्मण बोला कि अधिक वर्षा।

सर्प—इस तरह पोल खुलने पर तुमको दण्ड मिलेगा, अब से यह कहना कि अग्नी भय होगा।

यह सुन विप्र वहां से चल दिया। जब राजदरबार में पहुंचा तो ब्राह्मण को राजा ने प्रणाम कर पूछा कि महाराज जी अबके कैसा सम्वत् है।

ब्राह्मण—राजन्! अबके अग्नी भय है, प्रजा दुखी रहेगी।

राजा ने चार माह तक उसे अपने राज्य में रक्खा तो प्रत्यक्ष ही अग्नी भय हुआ फिर राजा ने ब्राह्मण को धन देकर विदा किया और चलते समय पूछा कि महाराज कुछ और आज्ञा है।

ब्राह्मण—सौ गट्ठा लकड़ी भिजवा दीजिये राजा ने वही किया।

अब उस दुष्ट स्वभाव ब्राह्मण ने सर्प की बामी पर लकड़ी रखवाकर अग्नि देदी और अपने घर की राह ली और आनन्द से रहने लगा ।

जब तीसरी साल प्रारम्भ हुई तो फिर उसी तालाब पर स्नान कर भोजन को बैठा तो वही सर्प फिर निकला अब ब्राह्मण कांपने लगा परन्तु नाग ने फिर भी प्रिय भाषण किया और कहा कि राजा से अब की बार यह कहना कि प्रजा सुखी रहेगी। ब्राह्मण ने राजा के यहां जाकर पूछने पर वही बतलाया। राजा ने फिर भी उसे चार माह तक रक्खा और सम्वत् ज्यों का त्यों हुआ राजा ने प्रसन्न हो उसे अत्यन्त धन दिया और कहा कि कुछ और आज्ञा है तब ब्राह्मण ने विचार किया कि नाग ने मुझे तीन बार सम्वत् प्रश्न बतलाकर धन दिलवाया है किन्तु मुझ पर अज्ञानी ने ऐसे संत के साथ ऐसा बुरा बर्ताव किया है। ऐसा विचार कर राजा से सौ गड़ा दूध मांग कर बामी पर ले गया और सर्प की विनती की तब सर्प पहिले जैसा स्वभाव से ही निकला ब्राह्मण ने हाथ जोड़ कर क्षमा प्रार्थना की।

नाग बोला कि तुमने मेरे साथ में जो दुष्कर्म किया मैं न उससे क्रोधित हुआ और न अब दूध डालने से प्रसन्न हूं सदैव एक स्वभाव रहता हूं तुमने जो कुछ किया उसमें तुम्हारा दोष नहीं क्योंकि मैं भी तो राजा के राज्य में निवास करता हूं । जब तुमने राजा से कहा था कि जल

से प्रजा दुखी होगी तो मैं भी जल से तुम्हारे द्वारा दुखी हुआ और तुवारा अग्नी भय में अग्नी से दुखी हुआ फिर तीसरी बार प्रजा के सुखी रहने से तुप मुझको भी दूध लाये हो सो हे ब्राह्मण जिस भाँति प्रजा रही उसी तरह मैं भी रहा क्योंकि मैं भी तो राजा की प्रजा में निवास करता हूं इसी प्रकार वार्तालाप कर के ब्राह्मण अपने घर आया और प्रमोद से जीवन व्यतीत किया।

—o—

नं० ५० चार बातें

एक दिन धर्मराज युधिष्ठर ने श्री मदन मोहन भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी से पूछा कि हे नाथ! इस ससार में जो बढ़ै ही बढ़ै वह क्या है तथा जो घटै ही घटै वह क्या है और जो घटै भी बढ़ै भी सो क्या है और जो न घटै न बढ़ै वह क्या है।

यह सुन भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी ने कहा कि जो बढ़ै ही बढ़ै वह तृष्णा है क्योंकि तृष्णा बालकपन में पैरों में रहती है और युवावस्था में वह शरीर (पेट) में पहुंच जाती है, तथा वृद्धावस्था में तृष्णा का निवास जिभ्या पर रहता है। जिभ्या इन्द्री है वह हर वक्त कुछ न कुछ नई वस्तु की चाह करती ही रहती है ऐसा शास्त्र पुराण भी वर्णन करते हैं कि ज्यों २ मनुष्य की उम्र घटती है त्यों २ तृष्णा बढ़ती है। मनुष्य उसी के पूर्ण करने में लवलीन रहता है और जो भवसिंधु से पार

कर्त्ता मेरा नाम है उसे भूल कर इस अमूल्य नर देह में हाथ धो। बैठता है अर्थात् मर जाता है परन्तु तृष्णा तब भी संग जाती है, कहा भी है कि—

माया मरी न मन मरे, मरि २ गये शरीर।
आशा तृष्णा ना मिटी, कथि गये दास कबीर॥

अन्त में मनुष्य को तृष्णा का दास बन कर आवागमन में भ्रमण करना पड़ता है अस्तु तृष्णा का सदैव त्याग करना उचित है।

दूसरे जो घटे ही घटे वह उम्र है, (३) तीसरे जो घटे भी और बढ़े भी मन की चंचलता है और (४) चौथे जो न घटे न बढ़े वह प्रारब्ध है, जो कुछ विधाता ने प्रारब्ध में लिख दिया है वह कदापि भी नहीं मिटता और न बढ़ता है।

———

नं० ५१ मैं कौन हूं

एक शिष्यने अपने गुरू से कहा कि हे स्वाभाविक दयालु गुरो आप आत्म तत्व के जानने हारे पुरुषों में शिरोमणि हो। भगवान मैं कौन हूं क्या मैं यह स्थूल शरीर हूं या दस इन्द्रिय हूं अथवा चंचल मन मैं हूं या पंच प्राण हूं अथवा बुद्धि मैं हूं या इन सम्पूर्ण इन्द्रिय मन प्राणादिकों का जो समूह है सो मैं हूं अर्थात् इन: षट् विकल्पों में से कौन हूं कृपा कर मेरे प्रति वर्णन कीजिये।

गुरु ने कहा कि हे शिष्य तूने प्रथम कहा है कि यह स्थूल शरीर मैं हूं सो तू नहीं है क्योंकि तेरा यह शरीर तो पन्च भूत (आकाश, वायु, अग्नि, अम्बु (जल) और पृथ्वी) से मिलकर बना है किन्तु आत्मा इन पंच्च तत्वों से सर्वथा पृथक है अस्तु शरीर में आत्म बुद्धि करना निरर्थक है विष्णु पुराण में लिखा है कि—

पंत्रभूतात्मके देहे देही मोहनमोवृत।
अहंममेतदित्युच्चै कुरुते कुमतिर्मतिम् ॥

अर्थ—यह अज्ञानी जीव मोह रूपी अन्धकार से आवृत हो इस पंच तत्व से बनी देह में मैं और मेरापन का भाव करता है। किन्तु शरीर तो जड़ है क्योंकि मात पिता के रजो वीर्य और अन्न दुधादि जड़ पदार्थों का कार्य है ऐसा नियम है कि जैसा कारण होता है तैसा ही कार्य होगा अस्तु शरीर के कारण अन्नादि जड़ हैं तो यह भी जड़ हुआ इसलिये तू शरीर तो कदापि नहीं हो सकता है और जीव तो नित्य है किन्तु शरीर अनित्य है जैसा कहा है कि—

जीवापेत वाव किलेदं म्रियतेने जीवो म्रियते।

अर्थ—जीव से पृथक हुआ शरीर ही नाश हो जाता है जीव नहीं मरता निदान यहाँ भी शरीर से जीव पृथक हुआ।

—o—
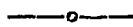
५२ इन्द्रिय ही जीव का स्वरूप नहीं है।

जब शिष्य ने दूसरा विकल्प जो किया था कि इन्द्रिय

स्वरूप मैं ही हूं इस पर गुरुजी ने कहा कि तुम इन्द्रिय स्वरूप भी नहीं हो सकते हो क्योंकि शब्दादि विषयों के ग्रहण करने हारी नेत्र श्रोतादि पांच ज्ञानेन्द्रिय और हस्त पादादि पाँच कर्मेन्द्रिय क्रमशः सतोगुण और रजोगुण से उत्पन्न हैं, सतोगुण और रजोगुण जड़ है, निदान इनकी कार्य रूपा इन्द्रिय भी जड़ हुई अस्तु जीव इन्द्रिय स्वरूप भी नहीं है क्योंकि जीव तो चैतन्य है और कल्पना की जाय कि इन्द्रिय ही जीव स्वरूप हैं तो अन्धे बहिरे मूक और पंगु आदि जो इन्द्रिय हीन हैं उनका निर्वाह कैसे होता है जब तक इस शरीर रुपी पिंजड़े में जीव रूपी पक्षी निवास करता है तब तक तो पुरुष को जीता कहते हैं और जीव निकलने पर मरा हुआ जब इंद्रिय ही जीव स्वरूप हैं तो अन्धे मूकादि जो इंद्रिय रहित हैं उनका तो निर्वाह होना ही नहीं चाहिये परन्तु ये तो औरों की तरह ही खाते पीते चलते फिरते दृष्टि आते हैं अस्तु दस इंद्रिय भी तू नहीं है। सामवेद की छांदोग्य उपनिषद् में यह प्रसंग लिखा है कि एक समय इंद्रियों में वाद विवाद छिड़ा एक कहती थी मैं श्रेष्ठ हूं दूसरी कहती मैं श्रेष्ठ हूं इसी भांति सब श्रेष्ठ बनने लगीं तब सब परस्पर सलाह करके पितामह ब्रह्माजी के पास गईं और बोलीं कि हे नाथ हम सब में से कौन श्रेष्ठ है यह सुन पितामह जी ने कहा कि तुम में से जिस के बिना शरीर स्थिर न रहे वही श्रेष्ठ है यह सुन पहिले वाचा इन्द्रिय निकल गई और साल बाद आई परन्तु शरीर को ज्यों का त्यों पाया तब कहने

लगी कि तुम मेरे बिना कैसे बचीं यह सुन औरों ने कहा कि जैसे गूंगा पुरुष सर्व व्यवहार करता हुआ जीता रहता है तैसे हम भी रहीं इसी प्रकार सब इन्द्रियाँ निकल कर एक साल बाद आतीं रहीं परन्तु शरीर का कुछ भी न बिगड़ा परन्तु जब प्राणों के सहित जीवात्मा निकलने लगा तो सर्व इन्द्रियाँ व्याकुल हो गईं और शरीर पतित होने लगा परन्तु इन्द्रियों के प्रार्थना करने पर जीवात्मा के स्थिर होने से शरीर स्थिर रहा यदि इन्द्रिय ही जीव स्वरूप होतीं तो उनके न रहने पर शरीर भी न रहता अस्तु तू इन्द्रिय भी नहीं है और जैसे हमको किसी चीज को जानना है तो चीज संज्ञा और जानना क्रिया और जानने वाला कर्ता है ऐसे ही यह मेरे नेत्र हैं यह मेरे हाथ पैर हैं और ये मेरे कान हैं इस भाँति तू सर्व इन्द्रियों को जानता है अस्तु तू कर्ता इन्द्रियाँ कार्य [संज्ञा] और जानना क्रिया पृथक् २ हैं और यह नियम भी है कि जो जिस को जानता है वह उससे पृथक होता है अस्तु तू दश इन्द्रिय भी नहीं है ॥

———०———

५३ मन भी जीव स्वरूप नहीं है

तीसरे विकल्प में शिष्य ने जो कहा था कि मन मैं ही हूं इस पर गुरुजी कहते हैं कि तू मन भी नहीं है क्योंकि पंच महा भूतों के सत्व अंश का कार्य होने से जड़ है और ऐसा कथन है कि जिस समय जिस गुण की अधिक प्रबलता होती है

उस समय मन की वैसी ही वृत्तियाँ हो जाती हैं जैसे कि तमोगुण के प्रबल होने पर तन्द्रा भ्रान्ति निद्रा ग्लानि मन की वृत्तियाँ हैं और रजो गुण के प्रबल होने पर भोग तथा वैभव की चेष्टा और कर्म करने में उत्साह तथा स्त्री धन पुत्रादिक विषयों में राग मन की वृत्तियाँ हैं और सतोगुण के प्रबल होने पर शाँति विराग धर्म में रुचि और प्रसन्नता आदि मन की वृत्तियाँ हैं और मनकी गति पवन से भी तीव्र है। इस हेतु मन विकारी हुआ किन्तु वेद, शास्त्र, पुराण और संतादि आत्मा को निर्विकार बतलाते हैं और यह नियम है कि जो वस्तु विकारी है सो अवश्य ही नाश होगी परन्तु आत्मा अविनाशी है जैसा कि श्रीकृष्ण भगवान जी ने गीता जी में कहा है—

> नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
> न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥ २३ ॥
> अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
> नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥ २४ ॥
> अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।

अर्थ—हे अर्जुन इस आत्मा को न शस्त्रादि काट सकते हैं और न अग्नि जला सकती है तथा जल गीला नहीं कर सकता है और पवन इसको सुखा नहीं सकता है ॥ २३ ॥ क्योंकि यह आत्मा अछेद्य है और अदाह्य, अक्लेद्य और अशोष्य है तथा यह आत्मा निःसन्देह नित्य सर्वव्यापक अचल स्थिर रहने वाला और सनातन है ॥ २४ ॥ और यह आत्मा इन्द्रियों

का अविषय, मन का अविषय और विकार रहित अर्थात् न बदलने वाला कहा जाता है और यह अखंडित आत्मा मन की श्रेय और अश्रेय वृत्तियों को सर्वदा जानता है यदि आत्मा विकारी होता तो कभी जानता और कभी न जानता अस्तु आत्मा निर्विकार ही सिद्ध हुआ और मन अपने विषयों को कभी जानता है कभी नहीं अस्तु यह विकारी है। इस कारण हे शिष्य तू मन भी नहीं है।

—o—

॥ नं० ५४ प्राण भी जीव स्वरूप नहीं है ॥

शिष्य ने चौथे विकल्प में जो कहा था कि प्राण ही मैं हूं तिस पर गुरु जी कहते हैं कि हे शिष्य इस नाशवान शरीर के अन्दर १ प्राण २ अपान् ३ व्यान ४ समान ५ उदान ६ नाग ७ कूर्म ८ कृकल ९ देवदत्त १० धनंजय दस भांति का प्राणगण है सो भी तू नहीं है क्योंकि पंच महाभूतों का कार्य है अस्तु जड़ हैं यदि प्रान समूह को चेतन्य माना जाय तो यह शंका है कि जिस समय पुरुष शयन करता है तो प्राण चलते रहते हैं किन्तु अवसर पाकर समीप रक्खे हुए धन को चोर चुरा ले जाते हैं यदि यह जड़ न होता तो क्या इसको खबर न पड़ती अस्तु तू प्राण समूह भी नहीं है।

—o—

नं० ५५ बुद्धि भी जीव स्वरूप नहीं है

शिष्य के पांचवे विकल्प का उत्तर देते हुए गुरु जी कहते हैं कि अच्छे और बुरे कर्मों के जानने हारी जो बुद्धि है सो तू नहीं है क्योंकि यह बुद्धि पंच महाभूतों के सत्व अंश का कार्य होने से जड़ है और विकारी भी है क्योंकि जाग्रत और स्वप्नावस्था में तो बुद्धि रहती है और सुषुप्ति काल में इसका विलय हो जाता है अस्तु उत्पत्ति और नाशवान् होने से बुद्धि विकारी है और आत्मा इनसे सर्वदा पृथक और अमर है इस हेतु हे शिष्य तू बुद्धि भी नहीं हो सकता है। अस्तु तू एक निर्विकल्प अजर अमर आत्मा है।
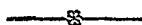
नं० ५६ हरि गर्व के खर्वकारी हैं

एक दिन सत्यभामा ने विचार किया कि मैं त्रिलोकीनाथ की प्रिय भार्या हूं इस कारण इस विधि की सृष्टि में मुझ से बड़ा कौन है मैं ही संसार की जननी (माता) हूं।

इसी प्रकार पक्षिराज के हृदय में अहंकार उत्पन्न हुआ कि भगवान चौदह भुवनों को धारण किये हुए हैं तिन भगवान का मैं वाहन हूं जो इतने बोझ को लेकर उड़ता हूं इस संसार में मेरे समान तीव्र गामी कोई नहीं है अस्तु मैं उड़ने में अद्वितीय हूं इसी हेतु तो भगवान ने मुझे अपना वाहन बनाया है।

इसी भांति चक्र सुदर्शन ने विचारा कि मैं भगवान का

आयुध हूं और अजेय हूं अस्तु मुझसे बड़ा कोई नहीं है।

श्री कमल नयन भगवान तो घट २ निवासी हैं तीनों के अहंकार को जान गये और खिन्न चित्त होगये यह देख सत्यभामा ने पूछा कि हे करुणा अयन सोच विमोचन भगवान आप आज शोक से उदास चित्त क्यों हैं।

भगवान—मुझे अपने पुराने भक्त का स्मरण हो आया और अब उनके बिन देखे एक पल भी काटना कठिन है।

सत्यभामा—हे नाथ ऐसे परम प्यारे भक्त को बुला क्यों नहीं लेते।

भगवान—यदि मैं राम रूप धारण करूं तो वे भक्त आ सकते हैं नहीं तो इस रूप से इनके विरह में दुख ही भोगना पड़ेगा। इस पर भी यहां तुम कोई सीता का रूप धारण नहीं कर सकती हो।

सत्यभामा—नाथ मैं सीता का रूप अवश्य धारण करूंगी।

यह सुन भगवान ने ऋष्यमूक पर्वत पर गरुड़ को भेजा तुम पवन तनय हनुमान को बुला कर लाओ। उनसे कहना कि द्वारिकापुरी में श्री रामचन्द्र जी भगवान ने तुमको स्मरण किया है। गरुड़ जी ने ऐसा ही किया। अंजनि कुमार श्री रामचन्द्र जी का नाम सुनते ही ऐसे व्याकुल हो दौड़े कि एक निमष कमलभ्रत (ब्रह्मा) के वर्षों की श्रेनी के समान व्यतीत होने लगा। पवन कुमार भगवान कृपा से अल्प काल में ही द्वारिका पुरी आगये और गरुड़ जो अपने गमन का अहंकार करता उस पर एक निमष भी हनुमान जी के साथ न उड़ा गयो यह

सब दयानिधि ही की माया थी द्वार पर जो चक्र अजित बनता था उसने हनुमान जी को पका किन्तु महावीर जी ने उसे पुष्प माला की भाँति हाथ में डाल लिया।

अब श्रीकृष्ण भगवान ने सतभामा से सीता बनो ऐसा कह स्वयं श्री राम रूप धारण करलिया किन्तु सत्यभामा सीता श्रृगार को सोचती ही रह गई इतने ही में रुक्मिणी जी ने सीता का रूप धारण किया बस हनुमान जी आकर के चरण में लेट गये। भगवान ने तीनों का गर्भ निवारण किया अस्तु अहंकार का सर्वदा त्याग करना उचित है।
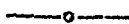
नं० ५७ पापात्मा के अन्न से साधू के भी स्वभाव बदल जाते हैं

किसी नगर में एक शास्त्र वेता विद्वान ब्राह्मण रहता था। उसकी विद्वता का यश चारों ओर फैल गया था उसी नगर में एक सुनार रहता था और बड़ा भारी पापिष्ठ था। एक दिन उसने उस महात्मा को न्योता दिया। महात्मा उस के पाप द्वारा धन संचय करने से परिचित न थे। उसने महात्मा को भोजन करा दिया। तो उसके भक्षण करते ही महात्मा की धर्म बुद्धि का क्षय हो गया क्यों कि पापात्मा का धन अपना प्रभाव अवश्य ही दिखाता है जैसा प्रसिद्ध है कि जिस समय महाभारत के अन्त में द्रोपदी समेत पांडव सर शैया पर पड़े हुए भीष्म

पितामह के पास राजनीति सीखने गये थे तो भीष्म जी ने राजनीति वर्णन की थी उस समय द्रौपदी ने कहा था कि आपकी यह राजनीति उस दिन कहां गई थी जब दुष्ट दुर्योधन ने मेरा चीर खिंचवाया था। यह सुनते ही भीष्म पितामह जी बहुत दुखी हुए और फिर प्रेम पूर्वक बोले कि हे पुत्री मैंने दुर्योधन पापात्मा का अन्न खाया था अस्तु मेरे पर उसी का प्रभाव था। जब मैं रण भूमि में उसके अन्न का बदला दे चुका हूं तब अब मेरी बुद्धि निर्मल हुई है ऐसे सुनार का अन्न खा कर महात्मा की बुद्धि में अन्तर पड़ गया।

महात्मा की कुटी के पास नगर के साहूकार का एक लड़का नित्य प्रति खेलने आया करता था उस दिन वह बालक कुछ सोने की रकम पहिन आया बालक को देखते ही महात्मा लोभ को प्राप्त हो गया और उसे अपने पास बुलाकर थोड़ी ही देर में शिशु हत्या करदी और मन्दिर में छिपा दिया जब साहूकार तलाश करता २ महात्मा के पास गया और पूछने लगा—

महात्मा जी कुछ बढ़ा कर कम्पायमान चित्त से बात करने लगे इतने ही में किसी मनुष्य ने कहा कि अभी हाल तो इन्हीं के पास था। साहूकार ने सन्देह से उस मन्दिर में ढूंढ़ा तो वह मराहुआ मिला निदान यह केस राज दरबारमें गया राजा ने आश्चर्य प्रगट किया कि ऐसा समदर्शी तथा धर्मात्मा महात्मा जिस पर ऐसा पाप कैसे बना इस में अवश्य ही कोई भेद है। राजा ने साधू से पूछा तुमने आज भोजन कहाँ किया।

महात्मा——इस नगर के सुनार के घर।

राजा तुरन्त ही ताड़ गया कि सुनार पर कोई निकृष्ट धन आया होगा। जिसके भक्षण करने से महात्मा की बुद्धि भ्रष्ट हो गई अन्त में सुनार को बुलाया और पूछा कि तुमने आज कल में किस का आभूषण बनाया है यह सुन सुनार ने कहा कि एक कसाई का आभूषण बनाया था उसी के माल का भोजन महात्मा को भी कराया है। यह सुन राजा को दया आ गई और महात्मा को छोड़ दिया और साहूकार को भी समझा बुझा दिया ।

॥ भावार्थ ॥

सच है निकृष्ट भक्षण से साधू भी असाधु हो जाते हैं अन्न की तो क्या निकृष्ट पापात्मा से वार्तालाप करने पर भी पुन्यात्मा के पुन्य क्षीण हो जाते हैं। विष्णु पुराण में कहा है कि—

देवर्षिपितृ भूतानि यस्य निः श्वस्य वेश्मनि ।
प्रयान्त्यनर्चितान्यत्र लोके तस्मान्न पाप कृत् ।

अर्थ—जिन मनुष्य के घर से देवता व मुनीश्वर और भूत गण बिना सन्मान पाये निःश्वास दौड़ते अन्यत्र चले जाते हैं उन से बढ़कर दूसरा और कोई पापी नहीं है—

सम्भाषणानुप्रश्नादि सहास्यां चैव कुर्वत : ।
जायते तुल्यतां तस्य तेनैव द्विज वत्सरात् ॥

अर्थ—ऐसे पुरुष के साथ एक वर्ष तक सम्भाषण तथा कुशल प्रश्न और उठने बैठने से मनुष्य उसी के समान पापात्मा हो

जाता है तिस में जो महात्मा ने ऐसे के घर भोजन किया था फिर क्यों न बुद्धि मलीन होगी ।

——o——

नं० ५८ मित्र व्यवहार निभाना अति दुर्गम है॥

संसार में धन संचय करना, ज्ञानप्राप्त करना, मानी होना आदि बहुत कर्म सरल हैं परन्तु मित्रता का निभाना महा दुर्गम है। मित्र से प्रेम में एक बार भी बिगड़ने से उसमें गाँठ पड़ जाती है। जैसे रस्सी के टूटने पर उसमें बहुत सी गांठ लगाते हैं परन्तु वह किसी न किसी दिन खुल ही जाती है। मित्रता के निर्वाह पर एक दृष्टान्त सुनाते हैं कि एक दिन जल ने दूध से कहा कि हे भाई आप हमारे साथ मित्रता करें। दूध ने प्रथम तो अंगीकार न किया परन्तु जब जल का मित्र भाव पर दृढ़ तथा निर्वाही जान कर उसे मित्र बनाया और अपने में मिला अपने ही समान बना लिया। जब दूकानदार ने दूध को भट्टी पर गर्म करने रख दिया तो जल ने अपनी बारी समझ कर अपना मित्र भाव दिखलाया कि अग्नी से आप जल गया परन्तु जब तक आप जीवित रहा तब तक मित्र को न जलने दिया। अब जब दूध ने अपने मित्र का वियोग पाया तो महादुखित हो उफन कर कड़ाही में से निकलने लगा जब दूकानदार ने एक लोटा पानी उसमें मिला दिया। जब दूध को अपना मित्र मिला तो तुरन्त ही उफनने से बन्द हो गया अन्त में दुकानदार ने भट्टी से उतार लिया और विक्रय किया तो दूध ने अपने मित्र जल

को भी अपने ही भाव में बिकाया ।

सच है मित्रता हो तो ऐसी ही हो । मित्रता निर्वाह का यह कैसा अनुपम दृष्टान्त है ।

———o———

नं० ५९ मित्र व्यवहार हो तो ऐसा हो ।

मित्र व्यवहार पर ही यह दूसरा लौकिक दृष्टान्त है कि एक मनुष्य ने अपने विदेश यात्रा के समय १००००) दस हज़ार रुपये गिन कर एक सन्दूक में बन्द कर दिये किन्तु अवसर पाकर उनमें से उसकी स्त्री ने ५००) रुपये निकाल लिये । जब वह विदेश गया तब सन्दूक को उठा कर अपने मित्र के घर रख गया और कुछ दिन पीछे आया और मित्र से वह सन्दूक मांगी मित्र ने कहा कि जहाँ धर गये थे वहां से उठा ले जाइये । यह सुन वह उठा ले गया और अपने घर जाकर ताला खोल कर रुपये गिने तो ५००) पांच सौ रुपये कम निकले । तब वह मित्र के घर गया और बोला कि ५००) पाँच सौ रुपये कम निकले हैं मित्र ने ५००) पाँच सौ रुपये अपने घर से दे दिये जब फिर लौट कर अपने घर आया तो उसकी स्त्री ने कहा कि रुपये गिन कर कहाँ गये थे । पुरुष ने कहा कि ५००) पांच सौ रुपये कम निकले थे सो लाया हूं तब स्त्रीने कहा कि वे तो मैंने निकाललिए थे । मर्द ने कहा कि तूने पहिले से क्यों नहीं कहा । रुपया लेकर मित्र के घर गया और बोला कि हमारे रुपये तो घर ही मिल गये

यह सुन मित्र ने कहा कि मिल गये तो घर जाओ कोई डर की बात नहीं है। बस इसी तरह निष्कपट मित्रता होनी चाहिये।

नं० ६० किसी के साथ अधिक स्नेह और संग का रहना दुखकारक है।

श्रीमद्भागवत में यह एक दृष्टान्त है कि एक कबूतर किसी वन की झाड़ी में घोंसला बना कर सहधर्मिणी समेत रहा करता था। गृहस्थ और परस्पर के प्रेम बन्धन से बंधे हुए दृष्टि में दृष्टि और मन से मन मिलाये हुए रहते थे। वे उस निर्जन वन में बेखटके खाते पीते, सोते बैठते और बात चीत करते थे। कबूतरी जब जिस वस्तु की चेष्टा करती कबूतर तभी अत्यन्त कष्ट उठा कर उसे वही वस्तु लाकर देता था। कालान्तर में कबूतरी के गर्भ से कई बच्चे उत्पन्न हुए। उनकी मीठी २ बोली और कलरव से हर्षित होते हुए उन दम्पतियों ने बड़े प्रेम से उनका पालन पोषण किया। उनके सुकोमल स्पर्श तथा फुदकने से जननी जनक को अत्यन्त प्रमोद होता था इस प्रकार भगवान की माया से मोहित हो कर परस्पर स्नेह बन्धन में बँधे हुए अपनी सन्तान का पालन करते रहे।

एक दिन वे कबूतर कबूतरी चारा लाने के लिए वन में गये और इधर अकस्मात् एक बहेलिये ने घोंसले के आस पास फिरते हुए उन कपोत शावकों को जाल में फंसा लिया। इतने

में कपोत कपोतिनी भी चारा लेकर अपने घोंसला के पास आये। और कपोतिनी ने अपने प्राणप्यारों को जाल में फंसे और चिल्लाते देखा तो महादुखित हो और दैव माया से वे खुद हो उस जाल में आ फंसी।

जब कपोत भी अपने प्राण प्यारों को जाल में फंसे देख कर विलाप करने लगा। अहो मुझ दुर्मति पर यह कैसा वज्रपात हुआ। मेरे आज दोनों लोक बिगड़ गये न तो मैं अपने परलोक को सुधार सका और न संसार सुख से ही तृप्त हुआ था। आज मुझ मन्द भाग्य की सब प्रकार योग्य और आज्ञाकारिणी अनुगामिनी भार्या मुझे अकेला छोड़ कर प्यारे बच्चों के साथ स्वर्ग जा रही है। हाय मेरे जीने को धिक्कार है।

इधर कपोतिनी और बच्चे उस जाल में महा दुखी हो कर छूटने को छटपटा रहे थे तो भी यह मन्दमति कबूतर स्नेह वस हो पुत्र पत्नी को मृत्यु के मुंह में जाता देख कर भी बिना सोचे विचारे उस मृत्यु पाश में जा फंसा। अन्त में बहेलियो हर्षित होकर सब को अपने घर ले गया।

एवं कुटिम्ब्यशान्तात्मा द्वन्द्वारामः पतत्रिवत्।
पुष्णन्कुटम्बं कृपण सानुबन्धोऽवसीदति ॥

अर्थ—इस प्रकार जो मनुष्य कुटम्बी शान्ति चित्त रहित हमेशा द्वन्द में ही पड़े रहते हैं वे अपने कुटम्ब के पालन में ही लगे रहने के कारण स्नेह बन्धन में बंध कर दीन हो उस कबूतर की तरह दुख के भागी होते हैं।

यह नर देही मानो मुक्ति का खुला हुआ दरवाजा है जो

जीव इसको पाकर भी कबूतर की तरह घर में लवलीन है वह अज्ञानी महा विमूढ़ कहा जाता है।

महात्मा तुलसीदास जी ने रामायण में लिखा है कि—

नर तन पाय विषय मन देहीं। पलटि सुधा ते शठ विष लेहीं॥

अर्थ—यह जो मनुष्य का शरीर है वह अति दुर्लभ और सर्व श्रेष्ठ है क्योंकि भगवान ने अपनी अजेय मायाशक्ति से वृक्ष, सरीसृप, पशु, पक्षी, डाँस, और मत्स्य आदि अनेक प्रकार की योनियाँ रचीं परन्तु उनसे सन्तुष्ट न होने के कारण पुनि उन्होंने ब्रह्म दर्शन की योग्यता वाले इस नर देह को रचा और रच कर अत्यन्त प्रसन्न हुए इसलिए यह मनुष्य देह सर्व श्रेष्ठ है जिसकी देवता हमेशा चेष्टा करते हैं। वास्तव में यह अनित्य है तो भी अति दुर्लभ है। अनेक जन्मों के पश्चात् इस परम पुरुषार्थ के साधन रूप मनुष्य शरीर को पाकर विषयों में मन देते हैं सो वे शठ हाथ में आये हुए अमृत को पलट कर विष हलाहल लेते हैं अर्थात् मनुष्य देह मोक्ष का दरवाजा कहा है जो इस अमृत रूप मोक्ष के दरवाजे को त्याग कर मोह वस विषय रूपी विष को लेते हैं अन्त में वे फिर इस आवागमन के चक्कर में पड़ जाते हैं। यदि प्रत्येक योनि में एक ही साल रहे तो यह मनुष्य देह ८३९९९९९ वर्ष में मिलेगी।

नं० ६१ तत्वोपदेश से विवेक प्राप्ति।

इस बात को वेद, पुराण और शास्त्र सभी वर्णन करते

हैं कि तत्वोपदेश से विवेक प्राप्त होता है। सांख्य शास्त्र में कपिल भगवान ने कहा भी है--

राजपुत्रवत्तत्वोपदेशात् ।

अर्थ--राजा के पुत्र के समान तत्वोपदेश होने से विवेक प्राप्त होता है जैसे कि एक राजा के गंड रोग युक्त एक पुत्र पैदा हुआ। राजा ने घृणा करके उसे बाहर वन में फिकवा दिया। उस नव शिशु को शावर (भील) उठा ले गया और यथाविधि उसका पालन पोषण किया। जब वह राजपुत्र बड़ा हो गया और अपने को शबर मानने लगा उसी काल में उस बालक के पिता राजा का मन्त्री वहाँ आ पहुंचा और राजपुत्र के भील कर्म देख कर बोला कि पुत्र तुम भील नहीं हो किंतु आर्य कुल तिलक हमारे महाराज के पुत्र हो। जब बालक को अपने जन्म का गुप्त वृत्तान्त ज्ञात हुआ तो वह उसी क्षण से भील कर्म को छोड़ कर राजकर्म में तत्पर हो गया और कालानुसार राज्या-धिकारी भी हुआ।

॥ भावार्थ ॥

बस राजा और राजपुत्र के समान ही जीव और ब्रह्म में अन्तर है। परन्तु यह अज्ञान के कारण माया वस अपने को जीव समझ कर आवागमन के जाल में फंसा हुआ है किन्तु जीव ब्रह्म का अंश है गुरु के तत्वोपदेश अर्थात् आत्म ज्ञान होनेपर अपने को जानने लगता है कि मैं कौन हूं। ऊपर राजपुत्र वत् कहने का भी यही आशय है कि जीव और ब्रह्म में राजा

और पुत्र के समान भेद है यदि ऐसा न होता तो राजपुत्रवत् कहने की क्या आवश्यकता थी राजवत् ऐसा ही कह देते। श्री रामचन्द्र भगवान ने भी लक्ष्मण जी से कहा है कि—

दोहा—माया ईश न आपु कहं, जानि कहिय सोइ जीव।
बन्ध मोक्ष प्रद सर्व पर, माया प्रेरक सीव॥

——)⊛(——

नं० ६२ तत्वोपदेश से विवेक प्राप्ति।

एक वन में एक मृगराज और उसकी पत्नी निर्भय विचरते थे। एक दिन मृगराज की स्त्री ने सिंह उत्पन्न किया। कालान्तर में वह एक गड़रिये के हाथ पड़ गया और उसका लालन पालन करने लगा वह सिंह का बच्चा भेड़ बकरियों के साथ चरता और बड़ा होने पर भी अपने को भेड़ समझने लगा।

एक दिन भेड़ों के साथ वह वन में चरने गया। कुछ देर पश्चात् अचानक ही वहाँ सिंह आ गया उसे देख कर भेड़ बकरियां भागने लगीं तिनके साथ में वह सिंह का बच्चा भी भागने लगा सिंह ने यह देख कर उस सिंह के बच्चे से कहा कि तुम क्यों डर के भागते हो· तुम तो सिंह वंशज हो। यदि सत्य न मानो तो मेरा रूप देख कर पानी में अपना प्रतिबिम्ब निहारो। सिंह के बच्चे ने ऐसा ही किया जब उसे अपना रूप ज्ञात हो

गया तो वह भी भेड़ों के खाने में समर्थ हुआ और उसके साथ हो लिया।

॥ भावार्थ ॥

वस इसी प्रकार आत्मज्ञान बिन नर भूल कर जीव कहलाता है ॥

—०—

नं० ६३ आशा का त्याग ही दुख का त्याग है

आशा कहा या चिन्ता ये शरीर में पावक के तुल्य हैं। यह उर के भीतर ही धुधियार्ता हैं और धून्न प्रगट नहीं होता है। रक्त और मांस जल जाता है सिर्फ हड्डी शेष रह जाती हैं।

कपिल भगवान ने कहा भी है कि—

निराशा सुखी पिंगलावत्—

जो मनुष्य आशा का सर्वथा त्याग कर देता है वह सदाँ सुखी रहता है जैसे कि पूर्व काल काल में विदेह नगरी में पिंगला नाम की एक वैश्या थी। उसकी चार मनुष्यों के आने का अवसर देखते २ बहुत रात व्यतीत हो गई परन्तु कोई विषयी उसके पास न आया तब वह जाकर पलंग पर सो रही कुछ देर पश्चात् उसे विचार हुआ कि शायद अब कोई आवे। ऐसा विचार कर बाहर आ बैठी रही किन्तु कोई धनवान उसके पास न आया कोई द्वार के सामने होकर जाता तो यह सोचती है कि कोई धन देकर रमण करने वाला नागरिक धनाड्य होगा। किन्तु जब वह मनुष्य वहां होकर निकल

जाता तो फिर सोचती है कि कोई अधिक धन देने वाला मनुष्य आता होगा। धन की दुराशासे प्रतीक्षा करते २ उसे बहुत रात बीत गई और चित्त व्याकुलता को प्राप्त हो गया। उस समय धनकी चिन्ता से व्याकुल होते हुए उसे परम आनन्दकारी वैराग्य उत्पन्न हुआ, वह कहने लगी कि—

आशा हि परमं दुखं नैराश्यं परमं सुखम् ।

अर्थ—आशा परम दुख की मूल है और निराशा परम सुख की मूल है। इस प्रकार कह भगवान के चरणों में प्रेम बढ़ाकर वह शान्ति चित्त हो अपनी सैया पर सो गई और अन्त में परम सुख को प्राप्त हुई। भागवत में कहा भी है कि—

निर्वेद आशा पाशानां पुरुषस्य यथाह्यसि: ।

अर्थ—मनुष्य के सुदृढ़ आशा पाश के लिये वैराग्य खड्ग के समान है। जब तक शरीर मे वैराग्य नहीं होता तब तक कोई भी देह बन्धन से छूटना नहीं चाहता। अस्तु आशा को ही दुख जान कर इसी का त्याग सर्व प्रथम परमावश्य-कीय है।

—o—

नं० ६४ सांसारिक सुख दुखों का धन ही मूल है।

कपिल भगवान ने कहा है कि—

श्येनवत् सुख दुखी त्याग वियोगाभ्याम् ।

संसार का यह नियम है कि जब धन प्राप्त होता है तब तब तो सुख और जब २ वह चला जाता है तब तब दुख होता है।

जैसे कोई बाज किसी पक्षी का मांस लिये चला जाता था। उसी समय किसी व्याध ने उसे पकड़ लिया और उससे वह मांस छीन लिया तो वह बड़ा भारी दुखी हुआ। यदि स्वयं ही उस मांस को त्याग देता तो क्यों दुख भोगता। इसी प्रकार मनुष्य को स्वयं ही विषय वासना धन चेष्टा आदि का त्याग कर देना चाहिये नहीं तो अन्त में यह दुखदाई होगा।

॥ भावार्थ ॥

मनुष्य को स्त्री पुत्र तथा कुटुम्बी जन अत्यन्त प्रिय होते हैं जिनका कि मोह त्यागन करना सुलभ नहीं। परन्तु धन इन से भी प्रिय है। धन के लोभ से मनुष्य इन सबों का त्याग कर सकता है किन्तु धन से भी प्रिय प्राण हैं। इन के सुख के लिए धन को भी व्यय करना पड़ता है परन्तु भगवान तो प्राणों के भी प्राण अर्थात् प्राण वल्लभ हैं। यदि भगवान के निमित्त यह प्राण जांय तो यह जीव मोक्षाधिकारी हो जाय किन्तु जीव तो अज्ञान वस दुखदायी सांसारिक वासना जाल में ग्रस्त है तो भी छूटने का यत्न नहीं करता वरन् और जिकड़ना चाहता है।

इति ससार दुखार्क ताप तापितचेतसाम्।
विमुक्ति प दमच्छायामृते कुत्र सुखं नृणाम् ॥

अर्थ—इस प्रकार सांसारिक दुख रूप सूर्य के ताप

से जिनका अन्तःकरण तृप्त हो रहा है उन पुरुषों को मोक्षरूपी वृक्ष की घनी छाया को छोड़ कर कहाँ विश्राम मिल सकता है। वह मोक्ष वृक्ष भगवत् भक्ति द्वारा ही प्राप्त किया जाता है। कहा है कि—

आहे निर्ल्वयिनीवत् ॥ १ ॥

छिन्न हस्तवद्वा ॥ २ ॥

जैसे सांप अपनी पुरानी केंचली को त्याग देता है उसी तरह मुमुक्षु को विषय वासना आदि का त्याग कर देना चाहिये और जैसे किसी मनुष्य का हाथ कट कर गिर पड़ता है तो वह उस कटे धरनी पर पड़े भाग से कुछ सम्बन्ध नहीं रखता। इसी तरह विवेक प्राप्त होजाने पर विषय वासना नाश हो जाती हैं। फिर मुमुक्षु उनसे कुछ सम्बन्ध नहीं रखता है।

नं० ६५ विवेक ही प्रकृति और पुरुष का ज्ञाता है

विवेक के द्वारा प्रकृति और पुरुष दोनों ही दीखते हैं। जैसे कोई मनुष्य अपनी गर्भिणी स्त्री को छोड़ कर विदेश चला गया था। उसके पीछे स्त्री के पुत्र पैदा हुआ। जब वह आया तब तक पुत्र पूरा युवक हो गया। परन्तु उन दोनों में न तो पुत्र जानता है कि ये मेरा पिता है न और पिता ही जानता है कि ये मेरा पुत्र है। तब स्त्री ने ही उसको प्रबोध कराया कि यह तेरा पिता है तू इनका पुत्र है। इसी प्रकार प्रकृति और पुरुष

के ज्ञात कराने वाला विवेक ही है। तीनों गुणों [सत् रज और तम्] की साम्यावस्था का नाम ही प्रकृति है और पुरुषात्मा अजर अमर निर्गुण और अभेद माया जनित सम्पूर्ण सांसारिक पदार्थों से पृथक है। किसी कवि ने प्रकृत, देह, महतत्व, तामस अहंकार और सत्य पुरुष की उत्पत्ति नीचे के सवैया में कैसे ढंग से की है—

काया यह काहे ते है काया पंचभूत ते है पंचभूत काहे ते हैं तमस अहंकार ते। तामस यह काहे ते है जाकी महतत्व कहें महतत्व काहे ते है प्रकृति मझारते। प्रकृति यह काहे ते जाको सत्य पुरुष कहें सत्य पुरुष काहे ते है ब्रह्म निरधार ते।

—०—

नं ६६ नीच को प्रशंसनीय पद देना अनुचित है।

नीच को भूल कर भी प्रशंसनीय पद पर नियुक्त न करना चाहिये यह नीति है क्योंकि वह प्रशंसनीय पद पाकर स्वामी के मारने की चेष्टा करता है। इस पर एक दृष्टान्त है कि—

प्राचीन काल में गौतम मुनि के आश्रम में महातपा नाम के ऋषि थे। एक दिन वहां एक कौवा चूहे के बच्चे को लिये जाता था। मुनि को देख कर दया आ गई क्योंकि महात्मा का दया करना तो स्वाभाविक गुण है। उन्होंने प्रयत्न कर चूहे को छुड़ाया और उसे पाला।

एक दिन एक बिलार चूहे के बच्चे को खाने दौड़ा वह बच्चा मुनि की गोदी में बैठ गया। तब मुनि ने तपोबल से चूहे को भी बिलार बना दिया। तब वह बिलार कुत्ते को देखकर मुनि के पास भागा तब मुनि ने श्वान से निर्भयार्थ करने को उसे भी बलवान श्वान बना दिया। फिर एक दिन श्वान व्याघ्र को देख कर भागा तब मुनि ने उसे भी व्याघ्र कर दिया। परन्तु आप उसे चूहा ही मानते थे। एक दिन कुछ मनुष्यों ने कहा कि इस चूहे को मुनि ने व्याघ्र कर दिया है। तब मन ही मन सोचने लगा कि जब तक यह मुनि जीवित रहेगा तब तक मेरा स्वरूप इसी के हाथ में रहेगा। अस्तु इसे मार कर खा लेना चाहिए। यह विचार मुनि के खाने को आया तब मुनिवर ने कहा कि तू चूहा ही होजा। तुरन्त वह चूहा हो गया। इसलिये नीच को प्रशंसनीय पद देना अपनी जड़ काटना है।

नं० ६७ भगवान कौन है।

ब्रह्म यद्यपि शब्द का विषय नहीं है। तथापि आदर प्रदर्शन के लिये उसका भगवत शब्द से उपचारत कथन किया जाता है। समस्त कारणों के कारण परब्रह्म के लिये ही भगवते शब्द का प्रयोग हुआ है। भगवत शब्द में भकार के दो अर्थ हैं पोषण करने वाला और सब का आधार तथा गकार का अर्थ कर्म फल प्राप्त कराने वाला लय करने वाला और रचने वाला है। समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, और वैराग्य इन

छः का नाम भग है।

उस अखिल भूतात्मा में समस्त भूत गण निवास करते हैं और वह स्वयं भी समस्त भूतों में विराज मान है अस्तु वह अव्यक्त परमात्मा ही वकार का अर्थ है । जो सब जीवों की उत्पत्ति और नाश आना और जाना तथा विद्या और अविद्या को जानता है वही भगवान कहलाने योग्य हैं। त्याग करने योग्य [त्रिविधि गुण और उनके क्लेस] आदि को छोड़ कर ज्ञान शक्ति, बल ऐश्वर्य, वीर्य और तेज आदि षट् गुण ही भगवन शब्द के वाच्य हैं।
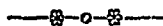
नं० ६८ दृढ़ता ही सफलता कुंजी की है।

जिसको द्रोहियों से न प्रतीति है और न भय तथा प्रीति है उन्ही को धन्यवाद है जिसको हर समय अपना कर्तव्य स्मरण रहता है उसका पुरुषार्थ [उत्साह] कभी कम नहीं हो सकता जैसे बादल सूर्य के काम में अनेक रुकावट करते हैं परन्तु उनके प्रकाश रूप दृढ़ कार्य को नहीं रोक पाते।

कर्म वीर मनुष्य दुष्ट स्वभावियों से सम्वाद नहीं करता किन्तु शांति तथा बल पूर्वक अपने काम को करता रहतो है । यद्यपि नीच जन दुर्वाक्य कह कर उसका अपमान करते हैं तौ भी वह अपने धर्म मार्ग पर इस तरह अरूढ़ रहता है जिस भाँति हाथी श्वानों के भूंकने से निर्भय हो चला जाता है ऐसे ही दुष्ट कर्म वीर का क्या बिगाड़ सकते हैं। मच्छरों की हुंकार

से गरुड़ कभी भयभीत नहीं हो सकते हैं ।

जैसे एक चन्द्रमा सम्पूर्ण ब्रह्मांड में प्रकाश करता है किन्तु अनेक तारागन नहीं ऐसे ही जो मनुष्य स्वयं पुरुषार्थ से खड़ा हो सकता है वही अपने कुल को प्रकाशित कर सकता है अनेक कुपत्र नहीं कर सकते हैं। जैसे अशिक्षित चतुष्पद् सिंह राज शब्द से युक्त है। निजी पुरुषार्थ तथा पराक्रम से ऐसे ही जो जन अपने सिद्धान्त पर अटल रहते हैं वह अज्ञानियों से विजय पाते हुए गौरव प्राप्त करते हैं।

दृढ़ प्रतिज्ञ मनुष्य को कार्य प्रारम्भ करके उसके बिना सफल किये कदापि न हटना चाहिये। जैसे नदियों को अपना प्रिय समुद्र नहीं मिलता तब तक उनका प्रवाह नहीं रुकता और जैसे जब तक सुर असुरों को अमृत न मिला तब तक समुद्र को मथते ही चले गये अर्थात् अपने कार्य पर अटल रहे तो समुद्र से चौदह रत्न लेकर सफलता प्राप्त की। इसी प्रकार मनुष्य अपने कार्य पर दृढ़ रहे तो अवश्य ही सफली भूत होगा।

कहा जाता है कि मेघ वायु के सामने नहीं डटते यह सत्य है किन्तु जो वर्षने वाले बादल होते हैं वे जब तक संसार को जल मय नहीं कर देते तब तक नहीं हटते चाहे कितना ही प्रबल पवन चले। इसी भाँति जो दृढ़ प्रतिज्ञ हैं वे धर्म मार्ग पर पदार्पण करके विचलित नहीं होते अन्त में वे ही सफलता प्राप्त करते हैं और इस काम में न वे अपयश ही के भागी होते

किन्तु वे तो संसार में सुयश के पात्र बन जाते हैं।

जैसे चातक चाहे प्राण त्याग दे परन्तु जब तक उसे स्वाती नक्षत्र का जल नहीं मिलता तब तक समुद्र तथा सरिता के किनारे वास करके भी उनका जल नहीं पीता ऐसे ही कर्म-वीर मनुष्य अपने सिद्धान्त से नहीं टलता चाहे उसे जीवन पर्यन्त क्लेशों का सामना करना पड़े। धीरजवान मनुष्य अनेक आपत्तियों का सामना करके भी धीरज विहीन नहीं होता और जैसे हाथी के दांत बाहर निकल कर फिर भीतर को नहीं जाते चाहे कटकर पृथ्वी पर गिर पड़े ऐसे ही कर्म वीर किसी कार्य में पग बढ़ा कर पीछे को नहीं हटता चाहे प्रानों को त्यागना पड़े और जो कार्य आरम्भ करके पीछे छोड़ बैठते हैं तथा आत्मघात कर लेते हैं वे तो संसार में उपहास पूर्ण अपयश के ही आगार माने जाते हैं और हमेशा को सत्यपुरुषों की दृष्टि से गिर जाते हैं—

जो मनुष्य निः स्वार्थ होकर संसार की भलाई चाहता है फिर संसार का वह पूजनीय क्यों न कहा जाय जैसे चिन्तामणी जड़ है और काम धेनु पशु है। परन्तु उनके दर्शन के लिये यह संसार उत्कंठित रहता है क्योंकि वे मिलते ही सम्पूर्ण मनोकामना पूर्ण करते है। इसी कारण पूजने योग्य हैं। जैसे अग्नी सम्पूर्ण वस्तुओं को जला देती है तौ भी पवित्र और पूजित है क्योंकि शीत भय और तम का नाश करती है और खाने के पदार्थों को

पकाती है किन्तु हिम शीतल होते हुए भी पूजित नहीं है क्यों कि ये हानिकारक अधिक है। इसी प्रकार यह नीति है कि जो दृढ़ता को धारण करके देश सेवा में तत्पर है वह अवश्य ही पूजनीय है चाहे वह नीच हो। अस्तु हम सबको अपने मार्ग पर दृढ़ रहना चाहिये।

नं० ६६ कुकर्मी को सब जगह बिपत्ति है

जिसके पूर्व कर्म अशुभ हैं वह फिर चाहे जहाँ जाय किन्तु उसका फल तो उसे अवश्य ही मिलेगा। एक पथिक कहीं भ्रमण करने को जा रहा था। उसका सिर वस्त्र रहित था। तिस पर भी वह गंजा था जब सूर्यनारायण की तीव्र किरण उसके सिर पर पड़ी तो वह उसके ताप से एक ताड़ के विटप तले विश्रामार्थ बैठा। इतने ही में अकस्मात् दैवयोग से वृक्ष का फल टूट कर उसके सिर पर पड़ा और सिर में आघात के लगने से वह व्याकुल होकर पृथ्वी पर लेट गया सिर से शोणित की धार बह निकली यह तो हुआ दृष्टान्त अब इसका दृष्टान्त सुनो।

यह जीव रूपी पथिक संसार के आवागवन में भ्रमण करता है जिसके प्रारब्ध कर्म शुभ हैं (अर्थात् गंजा नहीं हैं) उसको न तो सांसारिक दुख रूपी सूर्य का ही ताप व्यापता है

और न पूर्व अशुभ कर्मों का फल रूपी ताड़ वृक्ष दुख दे सकता है।

—:०:—

नं०७० उत्पन्न आपत्ति का समाधान करना ही बुद्धिमानी है।

ऐसा कहा जाता है कि उत्पन्न आपत्ति का जो मनुष्य समाधान करता है वही बुद्धिमान है जैसे एक वणिक की स्त्री ने आंख के सामने चोर को छिपाया।

पूर्वकाल में विक्रमपुर नगर में समुद्रदत्त नाम का एक वणिक था। उसकी स्त्री का नाम रत्नप्रभा था। वह अपने नौकर पर आशिक थी उससे हर वक्त मजाक करती थी। एक दिन वह अपने नौकर के मुख पर चुंमा लेती हुई समुद्रदत्त ने देख ली। वह स्त्री भयभीत होकर कहने लगी नाथ यह नौकर चोर है नितप्रति छिप कर कपूर खाता है आज मैंने इसे देख लिया तो भी यह अपनी करतूत को स्वीकार नहीं करता इस कारण मैंने इसके मुख को सुंघा था। यह सुन सेवक ने क्रोध करके कहा कि नाथ अब हमारा निर्वाह आपके यहाँ नहीं हो सकता क्योंकि जिस स्वामी की स्त्री प्रतिक्षण सेवक का मुंह सूंघती है वहां सेवक कैसे निर्वाह कर सकता है। यह कह कर चलने लगा परन्तु समुद्रदत्त ने समझा बुझा कर रक्खा। किसी ने सत्य ही कहा है कि—

आहारो द्विगुण, स्त्रीणां बुद्धिस्तासां चतुर्गुणा ।
षड्गुणो व्यवसायश्च कामश्चाष्टगुणः स्मृतः ॥

नं० ७१ प्रत्यक्षदोषी के झुठलाने से मूर्ख सन्तुष्ट होता है ॥

पूर्वकाल में श्रीनगर में रथकार नाम का एक निर्बुद्धि मनुष्य था । उसी गाँव में उसकी स्त्री का जार नाम का एक दोस्त था । एक दिन रथकार ने अपनी स्त्री से कहा कि मैं आज फलाँ ग्राम को जाता हूं ऐसा कह कर चल दिया और फिर लौट आया स्त्री को भेद प्रतीत न हुआ । वह आकर पलिंग के नीचे छिप कर लेट रहा सन्ध्याकाल होने पर वह जार नाम का यार आया और रथकार की स्त्री से पलिंग पर विहार करने लगा । उसके उपरान्त स्त्री का अंग नीचे बैठे हुये पति से स्पर्श होगया वह तत्काल अपने पति को मार (टग) जानकर उदास चित्त हो गई इस पर जार बोला कि आज तुम पहाड़ना से प्रसन्न वदन विहार नहीं करती हो सो क्या प्रयोजन है ।

अब स्त्री ने अपना त्रिया चरित्र दिखाया वह बोली तू मूर्ख है आज मेरे प्राणाधार दूसरे गांव को गये हैं इस हेतु अपर लोगों के रहते हुए भी वह गांव मुझे ऊजरसा दिखाई देता है क्योंकि पति का वियोग स्त्री को दुख दायक होता है ।

यह सुनकर जार ने कहा कि क्या झगड़ालू रथकार

तुझको इतना प्रिय है । इस पर वह स्त्री बोली देखो सुनो ।

जो पति अपनी स्त्री को कठिन वाक्यों से बोलता है और क्रोध दृष्टि से देखता है तो भी वह पति के सन्मुख प्रसन्न रहती है वही स्त्री धर्म की अधिकारिणी होती है । और पति चाहे वन में रहे चाहे घर में चाहे पापी हो चाहे धर्मात्मा हो जिनका पति प्यारा है उसी की संसार में कीर्ति उदय होती है । और स्त्री का परमाभूषण पति ही है जिस पर यह भूषण नहीं वह स्वरूपवान होकर भी कुरूप है । तुम क्या जानते हो मेरी यह प्रतिज्ञा है कि, मैं पति के जीने से जीती हूं और उनके मरणों परान्त देह त्याग दूंगी क्योंकि ऐसा कहा है कि, साढ़े तीन करोड़ मनुष्य में जो रोम हैं इतने ही काल तक पतिव्रता स्त्री पति सहित स्वर्ग में निवास करती है ।

व्यालग्राही यथा व्यालं बलाद्धरते बिलात् ।
तद्वद्भर्तारमादाय स्वर्ग लोके महीयते ॥ १ ॥
चितौ परिष्वज्य निचेतनं पति ।
प्रियाहि यो मुंचित देहमात्मन ॥
कृत्वापि पापं शतसंख्यमप्यसौ ।
पतिं गृहीत्वा सुरलोक माप्नुयात् ॥

अर्थ—जैसे मदारी सर्प को बिल से बल पूर्वक निकाल लेता है तैसे ही पतिव्रता स्त्री बलपूर्वक अपने पति को स्वर्गलोक लेजाती है । १ ॥ और जो स्त्री पति के मरणोपरान्त शव को प्रसन्नता से अपनी अंक में ले चिता में बैठ कर शरीर को त्याग

देती है वह पति को सौ पाप करने पर भी स्वर्ग में पहुंचा देती है ।

यह सुन कर उस रथकार ने कहा कि,मेरे लिये धन्य है जो मुझे ऐसी मधुर भाषिनी और पति ही को सर्वस्व मानने वाली स्त्री मिली है । ऐसा विचारता हुआ स्त्री पुरुष सहित उस पलिंग को शिर पर रखकर नाचने लगा । इसीसे तो कहा है कि,

प्रत्यक्षेऽपिकृते दोषे मूर्खः सान्त्वेनतुष्यति ।

प्रत्यक्षमें कियेहुए दोष पर फुसलाने से मूर्ख सन्तुष्ट होता है ।
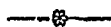
नं० ७२ चोर का स्वाँग ।

हमको भगवान की आराधना नित्यप्रति करनी चाहिये क्योंकि विषय वासना तथा सांसारिक दुख रूपी सूर्य से जिसका अन्तकरण तृप्त हो गया है उसको मोक्ष रूपी घने वृक्ष की छाया के सिवाय कहीं पर शान्ती प्राप्त नहीं हो सकती और मोक्ष रूपी वृक्ष के प्राप्त करने के केवल दो ही साधन हैं, पहिला (१) भगवान की भक्ती (२) दूसरा साँख्य योग इन दोनों में भक्ती का मार्ग सुलभ है मनुष्य जिस मार्ग पर चले बस उससे गिरना उचित नहीं है ।

एक चोर किसी राजा के यहाँ चोरी करने को गया किन्तु रात्रि में जब वह चोरी करने को उद्यत हुआ उसी क्षण राजा के यहाँ जगार हो गई चोर तुरन्त ही भागा परन्तु राजा

ने अपने कर्मचारियों सहित आतुरता में उसका पीछा किया। कुछ दूर निकल कर चोर ने देखा कि राजा पीछे देता ही चला आ रहा है तो वह अपनी रक्षा का प्रयत्न सोचने लगा जहाँ पर चोर खड़ा था वहां श्मशान था बहुत से मुर्दे पड़े हुए थे। चोर विचार कर उन मुर्दों में लेट गया। इतने ही में राजा सैनिकों समेत वहाँ आ पहुंचा। और सिपाहियों से बोला कि चोर इसी स्थान पर है इतना सुनते ही सैनिकों ने पद प्रहार करके सब मुर्दों को देख लिया परन्तु चोर ने पद प्रहार में, आह तक न की तब सैनिकों ने कहा कि महाराज जी यहां पर, चोर नहीं है। यह सुन राजा ने क्रोध पूर्वक कहा कि नहीं अवश्य ही चोर यहीं है।

यह सुन एक प्रवीन सैनिक ने हाथ में बल्लम लेकर मुर्दों को छेदा कुछ देर पीछे चोर में भी बल्लम दी बल्लम के लगते ही चोर के तन से रुधिर बह निकला यह दशा निहारते ही सैनिक ताड़ गया कि यही चोर है क्योंकि मुर्दे में रुधिर कहां से आया अपर मुर्दों में तो थाही नहीं ऐसा विचारकर राजा को क्षमा कर देने पर अङ्गीकार करके चोर को बतला दिया।

जब राजा ने चोर की ऐसी हालत देखी तो आश्चर्य युक्त होकर कहने लगे कि मैं क्षमा कर देने का वचन दे चुका हूं इस कारण लाचार हूं नहीं तो तू क्षमा करने के योग्य नहीं था। क्योंकि तूने बल्लम के लगने पर भी आह तक न की। तू बड़ा डाकू है यह सुन चोर निर्भय होकर बोला कि नाथ मुर्दे

का स्वांग फिर सीखा क्या काम अर्थात् जो जिसकी नकल करे उसको उसी के समान हो जाना चाहिये। मैं चोर था किन्तु मुर्दे का स्वांग किया था अस्तु मुझे भी अन्य मुर्दों की तरह होना पड़ा। इसी प्रकार जो भक्त बनना चाहे उसको अन्य पूर्व भक्तों के समान हो जाना चाहिये आपत्तियों का सामना करते हुए अपने सिद्धान्त से विचलित न होना चाहिये।

अब इसका दृष्टान्त इस प्रकार है कि ये जीवात्मा रूपी राजा है और मन रूपी चोर है जो बड़ा परिवारी है इसकी इन्द्रियाँ ही स्त्री हैं और काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकारादि पुत्र हैं जो जीवात्मा की चोरी करके छिप जाता है किन्तु जीवात्मा का ज्ञान रूपी प्रवीन सैनिक है जो वैराग्य रूपी बल्लम से इस को वेधित करता तब इसे बस में करता है।

—⊛—
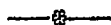
नं० ७३ पुन्य में पाप।

किसी २ समय ऐसा हो जाता है कि मनुष्य किसी कार्य को पुन्य समझ कर करता है परन्तु वह पाप हो जाता है। इस पर महाभारत के कर्ण पर्व का प्रमाण है कि एक सत्यवादी विद्वान महात्मा एक वन में भगवत आराधना किया करते थे। एक दिन आश्रम के निकट से चार पांच धनाड्य पुरुष निकले और आगे छिप गये इसके पश्चात् कुछ चोर शस्त्र लिये हुए

वहां आये और साधू से पूछा कि तुमने चार पांच पुरुषों को जाते हुए देखा है महात्मा ने अपने सत्य व्यवहार में भूल कर कहा कि अभी हाल आगे को गये हैं चोरों ने जाकर उनको मार डाला और माल को लेकर भाग गये। ऐसा करने से महात्मा को पांच हत्याओं का दोष लगा और मरणोपरान्त नरकवासी हुए क्योंकि सत्य का पुन्य कम रह गया और दोष अधिक लगा।

—o—

नं० ७४ पाप में पुन्य।

किसी वन में एक बड़ा हिंसक जानवर रहता था। वह बन के सभी जानवरों को मार खाता था। एक दिन वहां एकबहेलियाआ निकला और उस सोते हुये को मार दिया इससे बन के सम्पूर्ण पशु निर्भय हो गये। अन्त में बहेलिये को स्वर्ग प्राप्त हुआ। यह कथा भी कर्ण पर्व की है। यद्यपि हिंसा करना पाप था परन्तु एक की हिंसा करके सहस्रों की प्राण रक्षा हुई इस कारण पाप में पुन्य भी हो जाता है।

—❀—

नं० ७५ आलस्य ही दुख का बीज है।

एक मनुष्य को गंगा स्नान करने के लिए जाना था। गाड़ी नौ बजे जाती थी। प्रातकाल होते ही उसकी स्त्री ने

भोजन बना कर कहा कि भोजन तैयार है अस्तु आप भोजन से निवृत होकर जल्दी जाइए नहीं तो गाड़ी निकल जायगी। उसे मार्ग में ही एक बड़ा लाभ दायक काम था। वह बोला कि अभी तो काफी टाइम है धीरे २ सब काम कर लूंगा कुछ देर बाद स्त्री ने फिर कहा परन्तु फिर भी उसने उपरोक्त भाँति कह दिया अन्त में साढ़े आठ बजे घर से चला गाड़ी स्टेशन पर आगई और सीटी देकर चली गई वह मार्ग में ही हाथ मलते रह गया। फिर विकल होता हुआ स्टेशन पर गया और दूसरी गाड़ी से गया और मार्ग में जहां पर लाभ दायक काम था गया किन्तु समय पर न पहुंचने से वह बिगड़ गया और स्नान का पर्व भी हाथ से जाता रहा अस्तु आलस्य से काम में असावधानी न करनी चाहिए।

॥ तत्त्वार्थ ॥

इसी प्रकार यह काया रूपी रेल है इसमें बैठने वाला जीवात्मा मुसाफिर है और दश इन्द्रियाँ पटरी हैं और मन तथा बुद्धि ड्राइवर हैं और त्रिगुण (सत्, रज, और तम) झंडी है यह काया रूपी रेल नियत समय पर जाती है फिर एक क्षण भी नहीं ठहरती है अस्तु हे मुसाफिर बे टिकिट गाड़ी से न जाना क्योंकि हिसाब देना पड़ेगा अस्तु राम नाम रूपी टिकिट लेलेनी चाहिये ताकि टिकिट कलक्टर रूप यमदूत और स्टेशन मास्टर रूप यमराज दुख न दे सकें। हिचकी का आना ही तारकी खबर है जब श्वास इन्जन छूट

जाता है तब स्टेशन पड़ा ही रह जाता है । जिसके पास राम नाम की टिकिट नहीं वह तो कारागार रूपी नरकों में दुख भोगता है और जिसके पास ये टिकिट है वह निःशङ्क मुक्ति रूपी धाम में पहुंच जाता है ।

——०-§-०——

न०७६ मौत का घर

एक समय चार चोर चोरी करने के लिये गये किन्तु होनहार वस उनमें से एक मारा गया । तब शेष तीन चोरों ने कहा कि हमारे साथी को किसने मारा है । तब किसी ने कह दिया कि मौत ने मारा है ।

यह सुन तीनों को यह धुन सवार हुई कि हमभी मौत का पता लगा कर अपने साथी का बदला ले । मौत का पता लगाते उन्हें बहुत दिन व्यतीत होगये किन्तु मौत कहीं न मिली । एक दिन तीनों एक पर्वत की ओर आ निकले वहां पर एक वृद्ध मनुष्य मिला उसे देख कर चोर कहने लगे कि तू ही मौत का भाई जान पड़ता है अस्तु या तो अपनी बहिन का पता बतला नहीं तो हम तुझे ही मारते हैं यह सुन बेचारा बुड्ढा घबरागया किन्तु फिर धीरज धर कर बोलाकि मेरी बहिन का घर पर्वत के शिखर पर है । मैं उसे वहीं पर छोड आया हूं । यह सुन तीनों चोर पर्वत पर चढ़ गये वहां उन्होंने एक गुफा में सोना पड़ा देखा उसे देख लोभ के वशीभूत होगये और अपने एक साथी को भोजन लाने को बाजार भेज दिया ।

उसने बाज़ार जाकर सोचा कि भाई धन तो बहुत है, मुझे आटे में विष मिलाकर ले चलना चाहिये ताकि वे दोनों खाते ही मर जांय और सब धन मुझको प्राप्त होजाय।

यह विचार कर आटे में विष मिला लाया किन्तु इधर इन दोनों ने सोचा कि इसे मार दो तो इस धन को हम तुम दोनों ही परस्पर बांट लें। इतने ही में ये आटा लेकर वहां पहुंच गया। अब उन दोनों ने इस पर आघात किया और मार डाला। अन्त में निर्भय होकर भोजन पकाया और विभाजित करके खाने को बैठे किन्तु उसमें विष मिला था अस्तु खाते ही मरण को प्राप्त हुए।

अब विचारिये कि मौत का घर कहाँ रहा। लोभ में रहा सोना बड़ा मददायक है किसी ने कहा है कि—

दो०—कनक[1] कनक[2] ते सौ गुनी, मादिकता अधिकाय।
यहि खाये बौरात है, वहि पाये बौराय॥

॥ टिप्पणी ॥

(१) सोना। (२) धतूरा।

———o———

नं० ७७ विपत्ति के बारह बाट

जिस समय भरत जी अयोध्या में आये हैं और माता की करतूत सुनी है तब कहा है कि—

मातु कुमति बढ़ई अघ मूला। तेहि हमार हितकीन बसूला।

कलि कुकाठ कर कीन्ह कुयंत्रू । गाड़ि अवध पढ़ि कठिन कुमंत्रू ॥
मोहि लगि इहि कुठाट तेहि ठाटा। घालेसि सब जग बारह बाटा॥

मताने मेरे लिये ही यह कुठाट रचा और संसार को विपत्ति के बारह बाटों में कर दिया ।

श्लोक—"मोहोदैन्यभयंहासो हानिर्ग्लानिःक्षुधातृपा ।
मृत्युःक्षोभो वृथाकीर्तिर्वाटास्त्वे तेहि द्वादश ॥"

अर्थात्—१ मोह २ दीनता ३ भय ४ हास ५ हानि ६ ग्लानि ७ क्षुधा ८ तृपा ९ मृत्यु १० क्षोभ ११ वृथा १२ अकीर्ति ये बारह बाट हैं ।

——:o:——
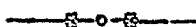
नं० ७८ शरणागत की रक्षा ।

एक समय गरुड़ जी ने एक छोटे भुजंग के बच्चे को भक्षण करने की इच्छा की । वह व्याल का बच्चा अपने प्राण रक्षा के निमित्त विष्णु भगवान के सिंहासन के नीचे घुस गया गरुड़ जी सन्मुख ही बैठ गये कि जब यह निकलेगा तब भक्षण करूंगा । तब भगवान ने विचारा कि गरुड़ मेरे शरणागत को भी खाना चाहता है । तब सर्प को वर दियो कि तू गरुड़ खाने में समर्थ हो । जब सर्प निर्भय हो गरुड़ पर झपटा तो पक्षिराज प्रार्थना करने पर छूटे ।

॥ भावार्थ ॥

भगवान अपना अपमान सहन कर सकते हैं किन्तु भक्त

का नहीं जैसे प्रमाणों में दुर्वासा और भक्त अम्बरीष भगवान शरणागत वत्सल हैं जैसे गाय बछड़े का शरीर चाट कर निर्मल कर देती है ऐसे ही भगवान भक्तों के पाप काट कर निर्मल कर देते हैं। आप स्वयं कहते हैं कि, "मम प्रण शरणागत भय हारी।,, और यह भी कहा है कि—

दोहा—शरणागत कहं जे तजहिं, हित अनहित अनुमानि।
ते नर पामर पाप मय, तिन्हें विलोकत हानि॥

अस्तु जो कोई आरत होकर शरण में आवे उसे त्यागना न चाहिये जहाँ तक बस चले तहाँ तक उसकी रक्षा करे।

———o———

नं० ७६ स्वामिभक्ति।

भगवान ने संसार में चौरासी लाख योनियां उत्पन्न की हैं और उन सब में मनुष्य को ही सर्व श्रेय बना कर उच्च बुद्धि प्रदान की है अस्तु मनुष्य का कर्तव्य है कि वह सर्व श्रेय होकर उन्हीं भगवान के गुणानुवाद गाता रहे इसी में इसका परम श्रेय है और लौकिक व्यवहार में भी जो भलाई करता है वह भला गिना जाता है और जो व्यक्ति धर्म त्याग अधर्म विलम्बी है वही दुर्जन श्रेणी में गिना जाता है। इसी विषय में स्वामिभक्ति के प्रति एक दृष्टान्त दिया जाता है कि जिसने स्वामी की रक्षा के अर्थ स्वयं अपने प्राण लोभ को तृन के

सहश्य त्याग दिया।

एक समय का विवरण है एक यात्री का अपने एक महान् आवश्यकीय कार्य के निमित्त अफरीका के सघन जंगल को पार करके जाना था। वहाँ पर भेड़िया अधिक रहते हैं यह विचार कर वह भयभीत हो गया परन्तु वहाँ जाना भी परमावश्यकीय है यह सोच उदास चित्त हो कर सम्पूर्ण वृतान्त अपने सेवक से कहा। सेवक ने कहा कि हे नाथ आप किंचित् मात्र भी चिन्ता को हृदय में स्थान न दें मैं सेवा को उद्यत हूं। मैं एक प्रयत्न करता हूं जो ईश्वर कृपा से अवश्य ही फलीभूत होगा। ऐसा कह दश घोड़ों की बग्घी ले आया और धीरता पूर्वक सघन वन के पार करने की ठान ली। धीरजवान् तथा साहसी पुरुषों को सफलता अवश्य ही मिलती है।

वह वेचारा बग्घी को तीव्र गति से ले जारहा था किन्तु होंन हार कब मिट सकती है अकस्मात् ही एक ओर से भेड़ियों का यूथ भक्षण करने को चला आया। यह अवलोकते ही स्वामी तो काठ की मूर्ति जैसा हो गया काटो तो रुधिर नहीं परन्तु सेवक धीरज विहीन न हुआ तुरन्त ही एक घोड़ा छोड़ दिया—घोड़ा इधर उधर दौड़ता रहा अन्त में भेडियों ने उसे मार कर भक्षण कर लिया इतने काल में वह नौ घोड़ों सहित बग्घी को बहुत दूर ले पहुंचा। भेड़ियों ने फिर पीछा किया तब उसने एक घोड़ा और छोड़ दिया। भेड़ियों ने उसे भी भक्षण कर और बग्घी वाले का पुनः फिर पीछा किया अर्थ यह

है कि ऐसा करते करते आठ घोड़ों को भेड़ियों ने खा लिया अब शेष दो घोड़ा रह गये थे यदि एक घोड़े को और छोड़ता है तो बग्घी नहीं जा सकती है और नहीं छोड़ता है तो सब की जान जाती है । इस विपत्ति जाल में फंस कर स्वामी तो पागल सा होगया और रोने लगा परन्तु उस सेवक ने कहा कि हे नाथ सेवक कर्म है कि जब तक तन में प्राण रहें तब तक स्वामी को दुखी न होने दे अर्थात् दुख निवारण का प्रयत्न करे अस्तु अब मेरी बारी है अब भेड़ियों के सामने में जाता हूं जब तक वे मुझे भक्षण करें तब तक आप आतुरता से बग्घी को बढ़ा ले जाइये अब पन थोड़े बीच में और है आगे आपका निर्दिष्ट स्थान है वहां पहुंच कर अपना कार्य सफल करना यह सुनते ही स्वामी रोने लगा परन्तु प्रवीन सेवक ने समझा दिया कि ऐसी अवस्था में धीरज से काम लीजिये कहा भी है कि—

दोहा—तुलसी असमय के सखा, साहस धर्म विचार।
सुचरित शील स्वाभाव ऋजु, राम शरण आधार ॥

अस्तु आप साहस निर्भय होकर जाइये । यह कह कर आप भेड़ियों के यूथकी ओर चला गया और स्वामी को बचा लिया बस धन्य है भक्ति (श्रद्धा) हो तो ऐसी ही होनी चाहिये इस कर्तव्य से उसने अपने दोनों लोकों को सुधार लिया ।

(—❀-)०(-❀—)

नं० ८० आजकल के कथा वाचक

एक समय एक स्थान पर कथा होरही थी और कथा वाचक जी बड़ी रुचि के साथ कथा कह रहे थे। श्रोतागण भी ध्यान पूर्वक कथा सुन रहे थे। एक जगह कथा प्रसंग ऐसे आया कि यदि किसी को मार्ग में भी कुछ मिले तो उस व्यक्ति को उचित है कि उसी स्थान पर तीन चार बार यह उच्चारण करे कि यह वस्तु किसकी है ऐसी नीति है। यह सुन कर एक मनुष्य ने हृदय में निर्णय किया कि अवसर पाकर वक्ता जी ही की परीक्षा लेंगे ये इस नीति पर स्वयं चलते हैं या नहीं कुछ देर में कथा वाचक जी अपनी व्यास गद्दी से उठ कर कथा समाप्त करके चले गये। इधर उस मनुष्य ने मिट्टी के गोल सिक्के बना एक थैली में भर कर वक्ता जी के मार्ग में डाल दिये और आप वहीं छिप कर बैठ गया। जब वक्ता जी लौट कर आये और ज्योंही उस स्थान पर पदार्पण किया त्योंही उनकी दृष्टि एकाएक थैली पर पड़ी उसके देखते ही वक्ता जी का हृदय हर्ष से परिपूर्ण हो गया। थैली को हाथ में उठा कर कथा के अनुसार तीन चार बार यह कहा तो था कि यह थैली किसकी है किन्तु धन के लोभ से बहुत धीरे २ कहा जिसको कोई अपर मनुष्य न सुन सके क्योंकि लोभ बुरी वृत्ति है यह वृत्ति एकाएक सबके सुकर्मों को चुरा लेती है इससे वही बचता है जो संसार से वैराग्य हो जाता है। नहीं तो यह सब के पुन्य कर्मों को अपहरण कर सकती है।

अब वक्ताजी थैली लेकर घर पहुंचे तो वहाँ सब मिट्टी के सिक्के निकले यह देख वक्ताजी बहुत दुखी हुए। फिर दूसरे दिन कथा कहते में वही उपरोक्त नीति वर्णन की। यह सुनकर वह मनुष्य बोला कि यदि कोई मन ही मन में कहले तो, वक्ताजी ताड़ गये कि अवश्य ही इसी की वह करतूत थी। बोला कि मन ही मन कहने से घर जाकर वह माल मिट्टी का हो जाता है यह सुनकर वह मनुष्य बहुत हंसा और वक्ताजी की पोल खोलने लगा अन्त में वक्ताजी बहुत लज्जित हुए।

॥ तत्वार्थ ॥

सत्य है वर्तमान काल में ऐसे ही कथा वाचक हैं और ऐसे ही अधिक संख्या में श्रोता गण हैं। रहीम जी ने कहा है कि—

दोहा—कहता तो सब कोई मिला, गहता मिला न कोय।
जो रहीम कहता मिला, सो वहि जाने दोय॥

अस्तु ऐसे महाशयों का सर्वथा संग त्याग करना उचित है।

—०—+—०—

नं० ८१ मुनि का सदुपदेश।

आरुणि उद्दालक के पूर्वकाल में श्वेतकेतु नामक एक पुत्र था। एक दिन श्वेतकेतु ने कहा कि पिताजी आप मुझे कुछ उपदेश दीजिए। यह सुन आरुणि उद्दालक ने कहा कि "कुछ चोर एक मनुष्य को पकड़ कर और उसकी आंखों से

पट्टी बाँध कर एक सघन वन में ले गये वह बेचारा गान्धार देश निवासी था।,, उस सघन वन में उसके धन को छीन कर आप तो नौ दो ग्यारह हो गये और उस बेचारे को वहीं छोड़ गये, वह उस वन में महा व्याकुल होकर रोने लगा उसकी दुख भरी आवाज को सुन कर एक दयालु पुरुष आया और उसने प्रथम उसको हाथ पैरों के बन्धन से निवारण किया। पुन आंखों की पट्टी भी खोल दी और पूछने पर यह भी बतला दिया कि, 'गान्धार देश इस दिशा में है, तू इस मार्ग से चला जा, वहीं पहुंच जायगा। यह सुन वह बुद्धिमान् अधिकारी जन उसके वचनों पर श्रद्धा रख कर एक गांव से दूसरे गाँव दूसरे से तीसरे इस प्रकार अपने गांधार देश में पहुंच गया। यह तो दृष्टान्त है अब इसको दृष्टान्त में घटाते हैं।

ये जीवात्मा रूपी तो गाँधार निवासी हैं और काम, क्रोध लोभ, मोहादिक चोर हैं जो इस जीवात्मा की आँखों पर अज्ञान की पट्टी बांध कर संसार रूपी भयंकर वन में छोड़ कर दुखित करते हैं। अब इसको बन्धन से मुक्त करने वाला (आँखों की पट्टी खोलने वाला) ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु संसार रूपी वन में होना चाहिए। जिससे यह जीवात्मा उनके बतलाये हुए मार्ग पर चलकर अविद्या के फन्दे से मुक्त हो अपने मूल स्वरूप 'सत्, आत्मा को प्राप्त हो।

नं० ८२ नमक की डली से सदुपदेश।

श्वेतकेतु ने कहा कि पिताजी मुझे फिर उपदेशिये जिससे मेरी अज्ञानता दूर हो। यह सुन पिताजी ने एक नमक की डली श्वेतकेतु को दी और कहा—"वत्स! इस डली को भरे हुए जल के लोटे में डाल दे और प्रातकाल लोटे को लेकर मेरे पास आना', श्वेतकेतु ने ऐसा ही किया। जब दूसरे दिवस लोटे को लेकर श्वेतकेतु पिता जी के पास गया, तो उन्होंने कहा—"हे प्रिय पुत्र! रात्रि को जो नमक की डली लोटे में डाली थी, उसको मुझे दे, श्वेतकेतु ने बहुत देखी, परन्तु वह डली लोटे में न मिली, क्योंकि वह तो जल में मिल गई थी। तब पिताजी ने कहा—'अच्छा, लोटे की इस ओर से जल पीकर तो बतला इसमें कैसा स्वाद है।, श्वेतकेतु ने पीकर कहा—'पिता जी! जल खारा है। फिर पिताजी ने कहा—'अब बीच में से पीकर बतला जल कैसा है।, श्वेतकेतु ने फिर पीकर बतलाया पिताजी खारा है। पुनः आरुणि ने कहा—'अब दूसरी ओर से चख कर बता, तब श्वेतकेतु ने बताया कि अब भी खारा है। तब पिताजी ने फिर कहा—"कि अब सब ओर से पीकर देख, तो वही खारीपन मिला और पिताजी को बतला दिया। वह कहने लगा कि पिताजी यद्यपि मैं नमक को आंखों से नहीं देख सका किन्तु जीभ द्वारा विदित होगया कि उसकी स्थिति जल में सदा है। यह सुन पिताजी ने कहा कि 'पुत्र जैसे तू नमक की डली को आँखों से नहीं देख सका किन्तु वह

जल में स्थित है इसी प्रकार यह सूक्ष्म 'सत्, आत्मा है जिसको तू नहीं देख पाता किन्तु वह आत्मा तू ही है।

नं० ८३ स्वार्थ से प्रेम दूर भागता है।

किसी गांव के समीप एक वृक्ष तले दो महात्मा रहते थे वे गांव से भिक्षा मांग लाते और आनन्द पूर्वक भगवान का भोग लगा कर प्रेम से प्रसाद भोजन करते थे। भगवान के भजन में दिन रात मगन रहते थे। गांव वाले मनुष्य भी उनके पास बैठे रहते कुछ समय में उनका यश फैलने लगा कि 'अमुक ग्राम में दो महात्मा बड़े ही भगवत भक्त रहते हैं। यह समाचार वहाँ के राजा तक को विदित हो गया, राजा भी सत्संगी था, वह महात्माओं की बड़ाई सुनकर वहाँ आया। जब उन दोनों महात्माओं को विदित हुआ कि हमारी बड़ाई सुन कर राजा दर्शन को आते हैं तो उन्होंने विचारा कि ऐसी बड़ाई से बचना चाहिए नहीं तो हम कल्याणपथ से गिर जाँयगे। क्योंकि यतियों को तो निसंगताही मोक्ष देने वाली है। यह सोच कर उन्होंने रोटियों पर परस्पर झगड़ा मचाया। एक रोटी के बट पर लड़ाई करने लगे, राजा ने यह देखकर विचार किया कि ये तो दोनों स्वार्थी प्रतीत होते हैं। इनके समीप जाना हानिकारक होगा यह सोच कर राजा अपने नगर को लौट गया। अब विचारिये कि जब झूठे स्वार्थ के दृश्य को देख कर प्रेम भाग

गया तो उनके स्वार्थ भाव में प्रेम कहाँ रह सकता है (उन महात्माओं ने जो स्वार्थ दिखलाया था वह अपने लाभके लिये झूंठा ही तो था। किन्तु राजा तो उनको स्वार्थी समझ कर भाग गया। अस्तु भगवान में निष्कपट स्वार्थ रहित प्रेम करना चाहिये। तभी हमको भगवान प्राप्त हो सकते हैं क्योंकि प्रेम में तो उनका निवास ही है।

——:०:——

नं० ९४ शान्ताकार की कथा

किसी समय में एक मूर्ख राजा था। उसके पास एक दिन एक महात्मा आया, और प्रसंग चलने पर कहने लगा कि शान्ताकारं भुजग शयनं पद्म नाभं सुरेशं, इसका अर्थ विद्वान से विद्वान पंडित तुमको तीन साल में बतला सकता है। यह कह कर महात्मा चला गया। राजा ने इस बात को कपोल कल्पित मानकर इसकी परीक्षा के निमित्त देश भरके विद्वानों को एकत्रित किया और सब के सन्मुख वही उपरोक्त श्लोक अर्थ समझाने को रक्खा गया। साथ ही साथ पुरस्कार भी नियत किया विद्वानों ने अल्प काल ही में अपने २ भावार्थ राजा को सुना दिये। किन्तु राजा एक को भी न समझ सका— क्योंकि वह निरक्षर (अपढ़) था। वह संस्कृती भाषा के अर्थ को क्या समझे, कुछ इस पर भी भ्रम था कि पहिला महात्मा तो यह कह गया है कि इसका अर्थ विद्वान से विद्वान

तुमको तीन साल में बतला सकता है किन्तु इन्होंने तो थोड़ी, ही देर में इसका अर्थ कर दिया है अस्तु मेरे विचार में तो इनका अर्थ ठीक नहीं ऐसा विचार कर उन विद्वानों को पुरस्कार के बदले कारागार में बन्द करादिया होते २ कुछ दिन पीछे एक महात्मा वहाँ आया, तो राजा ने वही श्लोक उनसे कहा ? महात्माने उत्तर दिया-कि राजन् "मैं इसके अर्थ को आपको तीन साल में बतला सकता हूं" । यह सुनते ही राजा को विश्वास हो गया कि यह मुझको ठीक अर्थ बतलादेगा ऐसा विचार कर उसे अपना गुरू बना लिया ।

महात्मा जी ने प्रथम राजा को शब्द, मात्रा और वर्णा दिक बोध कराया । इसके पीछे संस्कृती पुस्तकों का अभ्यास कराया, और व्याकरण में भी ज्ञान कराया । अन्त में तीन साल के पश्चात् यह निरक्षर राजा पूरा व्याकरण हो गया तो महात्मा ने कहा—"कि राजन् अब आप अपने पूर्व श्लोक का अर्थ निकालिये" । राजा ने ऐसा ही किया तो वही कारागार के विद्वानों वाला अर्थ निकला तब राजा असमंजस में पड़ गये और कहने लगे कि नाथ इस अर्थ को मैंने गलत जानकर विद्वानों को कैद कर लिया था सो भूल की यह तो वही अर्थ निकला जो विद्वान बतलाते थे ।

यह सुन महात्मा जी ने कहा कि "राजन धीरे २ ही सब काम किये जाते हैं, एक साथ नहीं क्योंकि सीढ़ी से सीढ़ी चढ़ कर ही मकान के ऊपर पहुंचा जाता है,, ।

ऐसे ही जो मनुष्य निरक्षर (अपढ़) है जो कि स्वर व्यंजन और वर्णादि के भेद को नहीं जानता वह प्रथम ही काव्य तथा श्रुतियों की संस्कृत (देववाणी) को कैसे समझ सकता है जैसे कि पहिले आप थे किन्तु अब आप भी जटिल श्लोकों को साधारण समझेंगे। निरक्षर को तो एक सरल शब्द भी पहाड़ के समान ऊंचा प्रतीत होगा। यह सुनते ही राजा अपने किये पर रोने लगा और विद्वानों को छोड़ उनके चरणों में पड़ कर अपना अपराध क्षमा कराके उनको सादर पुरस्कार देकर विदा किया।

इससे यह शिक्षा मिली कि चाहे कैसा ही कठिन कार्य आकर पड़े किन्तु उससे निराश होकर बैठ न रहना चाहिये किन्तु उसे धीरे २ करते रहना ही उचित है। यह न सोचे कि आज ही यह काम हो जाय ऐसा करने से असफलता प्राप्त होती है।

——o——

नं० ८५ सन्तोष ही परम सुख का मूल है

सन्तोषी मनुष्य सर्वदा सुखी रहता है और असन्तोष अथवा आशा तृष्णा दुख की हेतु हैं। विचारने की बात है कि मनुष्य का प्रधान धन सन्तोष ही है जैसे कि—

दोहा—नहिं धन धन है परम धन तोषहिं कहहिं प्रवीन।
बिन सन्तोष कुबेर हूं, दारिद दीन मलीन॥

जब सन्तोष ही परमसुख तथा धन है तो न जाने अज्ञानी जन इस धन का क्यों त्याग कर देते हैं।

एक मनुष्य महादीन था। यहाँ तक कि वस्त्र तथा भोजन को भी तंग था। एक दिन उसको पृथ्वी में पाँच हाँड़े रुपये मिले वह उनको पाकर महा प्रसन्न हुआ और अपने घर आया। अब उसे यह धुन सवार हुई कि ऐसे छः हाँड़े रुपयों के होने चाहिए। रात दिन वह इसी चिन्ता में रहने लगा और घरके खाने पीने का खर्च भी कम कर दिया। स्वयं भी महा दुख सहन किया। पहिले जब वह निर्धन था तो उस अवस्था में तो दो चार ब्राह्मण भोजन भी कराता और सन्तोष से रहता किन्तु अब सन्तोष को त्यागने से सब काम विपरीति हो गये उसने उस छठवे घड़े के भरने को भरसक प्रयत्न किया किन्तु वह पूरा ही न हुआ। एक दिन विधि गति से चोर आकर सब धन को चुरा लेगये। अब वह पहिले जैसे हो गया और महा दुखी रहने लगा। यदि वह उन्हीं पाँच घड़ों में सन्तोष कर लेता तो सुखी रहता किन्तु वहाँ तो उसने असन्तोष को स्थान दिया इसी कारण सुख के बदले दुख उठाना पड़ा।

नं० ८६ हिंसा का फल

एक हिंदुस्तानी व्यक्ति बोखारा शहर में व्यापार करने गया था। जब दो तीन साल पश्चात उसके पास बहुत सा धन

प्रकाशित हो गया तो वह अपने देश भारतवर्ष में लौटने का निर्णय करने लगा। वहाँ के चोरों को इसका परिचय (विदित) होगया। चोरों ने आडम्बर रचा और एक झूठा काफ़िला बना कर उस हिन्दू के साथ हो लिये। एक सघन वन में आकर चोरों के अफसर ने कहा—"हम सब लोग चोर हैं, तुम्हारे धन के लेने को ही हमने यह झूंठा आडम्बर बनाया है। अब हम तुमको अपने आदि सनातन धर्म के अनुसार मार कर धन लूटेंगे ब्राह्मण सुनते ही काठ के समान हो गया। काटो तो रुधिर नहीं। यह गति देखकर चोरों ने कहा कि तुमको एक घंटा का अवकाश दिया जाता है अब तुम जीवन के अन्तिम अवसर पर अपने ईश्वर का स्मरण करलो। हिन्दू ने धीरता से भगवान की विधि पूर्वक पूजा की और फिर हाथ जोड़ कर विनय करने लगा कि—"हे अनाथों के नाथ आरतहर अजर अविनाशी प्रभो मेरी रक्षा करो रक्षा करो। मैंने जन्म भर आपही की पूजाकी है। क्या आज उसका यही फल देते हो कि मैं इन कसाइयों के हाथ से निर्दयता से मारा जाऊं,, इतने ही में आकाश वाणी हुई कि-"तुमने पूर्व जन्म में मनुष्यों की प्राणहत्या की है। तुमने इन चालीसों आदमियों का शीश काट डाला था। इस कारण तुम्हारे इस दुष्कर्म का फल अवश्य ही मिलनी चाहिये। नीति के अनुसार तो पृथक २ इन चालीसों व्यक्तियों के हाथ से चालीस जन्मों में चालीस बार शीश कटवाना चाहिये। किन्तु तेरा ये चालीसों मिलकर

एक वार ही आज शीश काटते हैं यह सब मेरी ही सेवा का फल है ! क्या तुम अपनी सेवा के इस फलको कम समझते हो !" इतने ही में एक घंटा समय बीतने पर चोरों ने हिन्दू को मार डाला और धन को लेकर नौ दो ग्यारह हो गये।

——०❀०——

नं० ८७ अहिंसा परमोधर्म (दया का फल)

मैं उस परम पिता घट २ वासी परमात्मा को कोटा निकोटि वार नमस्कार करता हूं कि उन्होंने सम्पूर्ण सृष्टी को रचकर चौरासी लाख योनियां उत्पन्न की हैं। जिनमें मनुष्य को सब से श्रेष्ठ बनाकर उच्च बुद्धि प्रदान की है। ऐसो श्रेष्ठ हो और उच्च बुद्धि पाकर भी पामर जन दुष्कर्मों में जुटे रहते हैं। उनको चाहिये कि वे अच्छे २ कर्म करके अपने जीवन को सुफल बनावें।

उन शुभ कर्मों में से अहिंसा भी एक परम शुभ कर्म है इसी विषय में एक दृष्टांत है कि सुबक्गीनगज़नवी युवावस्थासे एक कबीला का सरदार थां। वह इतना दीन [रंक] था कि घोड़े के सिवाय पास में और कुछ न था। वह अपना अधिकतर समय आखेट में व्यतीत करता था। एक दिन सुबक्गीन ने एक हिरनी और उसके बच्चे को बन में निर्भय चरते देखा तो घोड़े को

दौड़ा कर उस बच्चे को पकड़ लिया । और अपने घर ले आया। बेचारी दीन हिरनी भी उसके पीछे२ चली आई सुबक्तगीन ने अहिंसा को परम धर्म मान कर हिरनी पर अस्त्र नहीं छोडे किन्तु दयालुता से हिरनी को दुखी देख कर उसके बच्चे को छोड़ दिया ।

जब सुबक्तगीन रात्रि को लौटा तो स्वप्नमें देखा कि आन हजरत आए हैं और कहते हैं "कि खुदा तेरी इस अहिंसा और दया से प्रसन्न हैं और तेरा नाम बादशाइत में दर्ज कर लिया है तुम किसी दिन बादशाह हो जाओगे ? प्रजा के साथ में भी ऐसा ही व्यवहार करना" अन्त में सुबक्तगीन का स्वप्न सत्य हुआ ।

इसी प्रकार महात्मा बौद्ध ने भी अहिंसा को परम धर्म बतलाया है ।

सर्वे यज्ञेषु यद्दानं, सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ।
सर्वं दानं फलं वापि न तत्तुल्यमऽहिंसया ॥

परन्तु आज कल तो मनुष्य हिंसा को ही प्रिय मान बैठे हैं । जिस प्रकार मोर सर्पों को खाकर डकार नहीं लेता उसी भांति आज कल मनुष्य एक हिंसा करके हाथ तक नहीं धोते ।

———o-o-o———

नं० ८८ सज्जन के उर भूल से पाप करने पर आन्तरिक क्लेश होता है ।

यदि सज्जन पुरुष अज्ञान वस पाप जाल में फंस जाता

है तो ज्ञान के उदय होने पर उसी को भले ही आत्मग्लानि अथवा आन्तरिक क्लेश होता हो, पुराने पापियों को तो इसकी खबर भी नहीं होती।

टर्की खलीफा "मौतासर,, अज्ञानतावस लोभ के जाल में फंस गया था। अस्तु उसने राजलोभ के कारण अपने पिता को मरवा दिया था। एक दिन वह पिता के राज भवन का सामान देख रहा था। देखते २ उसकी दृष्टि एक अति श्रेष्ठ चित्र पर पड़ी जिसमें एक युवक पुरुष घोड़े पर सवार था और रत्नों से जड़ा हुआ ताज उसके सिर पर सुशोभित था। उसके आस पास फारसी भाषा में कुछ अंकित था। खलीफा "मौता-सर,, ने अपने एक मुनीम को बुलवा कर उसको पढ़वाया। उसमें यह लिखा था कि मैं सीरोज़ खुसरो का पुत्र हूं, मैंने अज्ञानता के वशीभूत होकर ताज लेने की इच्छा से अपने पिता को मरवा डाला पर उसके पीछे दुष्कर्म के कारण वह ताज मैं केवल छः महीने अपने शिर पर रख सका (क्योंकि दुष्कर्म का नतीजा) बुरा होता है।

यह बात सुनते ही खलीफा "मौतासर" के दुख की सीमा न रही उसके चित्त पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा और उसे आत्मग्लानि अथवा आन्तरिक क्लेश ने घर दबाया जिसके कारण वह केवल तीन ही दिन राज्य करके मर गया। इसी से तो कहा है कि "यदि आन्तरिक क्लेश होता हो तो किसी नये को जाल में फंसने से भले ही होता हो पुरानों को नहीं। जैसे

दुर्गन्ध में रहने वाले व्यक्ति की नाक में दुर्गन्ध समा जाती है तब उसको दुर्गन्ध नहीं जान पड़ती अथवा जैसे पत्थर पर बार बार तलवार के मारने से उसकी धार स्वयं ही मन्द पड़ जाती है इसी प्रकार ऐसे मनुष्य के मन से अनीति की ग्लानि निकल और उसके मन पर निकृष्ट प्रवृत्तियों का पूरा २ अधिकार जम जाता है। किसी ने ठीक ही कहा है कि सुख दुख का आधार सत्कर्म और दुष्कर्म पर है।

——o——

० ८६ माया ने जीव को ग्रसित कर रक्खा है या जीव ने माया को ग्रसित कर रक्खा है।

किसी नगर के समीप एक विद्वान महात्मा का रमणीक आश्रम था। जहाँ पर कि माया जा ही नहीं सकती थी। उनका एक शिष्य था जो गुरु जी की गायें चराता और भिक्षान्न से पेट भर कर नित प्रति आनन्द पूर्वक विद्याध्यन करता था।

एक दिन गुरु जी ने कहा—"कि हे तात? मैं कुछ काल को देशाटन के लिये जाता हूं, तुम आश्रम में रहकर गौओं का पालन पोषण करना और साधुवृत्ती से अपने भी अमूल्य काल को भगवान के गुणानुवाद में व्यतीत करते रहना जिससे किसी प्रकार की आपत्ति का सामना न करना पड़े।" यह कह कर

महात्मा जी तो चले गये और शिष्य भी गुरु के सदुपदेशानुसार रहने लगे। उसी समय में उस गांव में एक नवयुवक पुरुष मर गया था। उसकी स्त्री पेट पालने के लिये शिष्य के आश्रम में गई और हाथ जोड़ कर बोली "कि हे नाथ मैं आपकी गौओं का गोबर कर दिया करूंगी और गौशाला की सफाई भी किया करूंगी इस परिश्रम में आप मुझे पेट पूर्ती के लिये केवल एक सेर आटा नित्य प्रति दे दिया करना।

शिष्य को यह सुन कर दया आगई उसने निष्कपट हो कहा—"कि, तुम वे रोक टोक इस काम को कर सकती हो" अब वह स्त्री नित्य प्रति वहाँ उस काम को करने लगी और शिष्य भी उदारता से रहते थे (किन्तु कुछ काल बीतने पर धीरे २ उस युवती के नैन सर शिष्य के हृदय में चुभ गये अब वे उसकी चाह करने लगे स्त्री भी उनको चाहती थी (फिर क्या था) दोनों परस्पर प्रेम से हंसी मजाक भी करने लगे दोनों को कामदेव ने जीत लिया। शिष्य जब से लिंगेन्द्रिय के वस में हुए थे तभी से उनके हृदय से ज्ञान जाता रहा अब वे दोनों परस्पर भोग विलास भी करने लगे कालान्तर में उसके दो, तीन, बाल बच्चे भी उत्पन्न हो गये । अबतो शिष्य गृहस्थी होकर खेत भी करने लगे । इसके पीछे उसके गुरु जी लौट कर आये तो शिष्य की यह गति मिली, गुरु जी के आने का समाचार सुन कर नगर निवासी जन वहाँ पर आये और हाथ जोड़ कर बोले ? "कि, हे स्वामी आपके

शिष्य को तो माया ने ग्रसित कर लिया है ।" यही बात शिष्य भी करने लगा तो महात्मा जी को क्रोध आगया और खड़े होकर एक नीम के वृक्ष को हाथों से पकड़ लिया और कहने लगे—"कि, मुझको नीम ने ग्रसित करलिया है।" तब शिष्य बोला—"कि हे स्वामी यह नीम आपको कैसे ग्रसित कर सकता है इसको तो आपने ही पकड़ रक्खा है।" आप अपने दोनों हाथ अलग कर दीजिये तुरन्त ही छूट जाओगे यह सुन गुरुजी ने कहा—" कि मैं बहुत ही बल लगा रहा हूं किन्तु यह नीम मुझे नहीं छोड़ता है।" यह सुन शिष्य ने गुरु जी के हाथों को पकड़ कर नीम से अलग कर दिया तो गुरुजी ने क्रोध पूर्वक शिष्य के तन में कई चीमटा दिये और कहा—"कि शठ जैसे नीम को मैंने ही पकड़ रक्खा है बेचारा जड़ नीम मुझको क्या पकड़ सकता है। इसी प्रकार माया भी जड़ है और तू चैतन्य है फिर बता जड़ पदार्थ ने तुझे कैसे ग्रसित कर लिया" यह सुन शिष्य लज्जित हो गया और महात्मा जी उस आश्रम को छोड़ कर दूसरी जगह चले गये।

नं० ९० मन भूत को बस करने का उपाय

किसी ग्राम में एक धनाड्य वणिक रहता था। उस ग्राम के समीप एक महात्मा का ललित आश्रम था। एक दिन

यह वणिक उस महात्मा के पास गया और बोला—" कि, हे स्वामी मैंने सुन रक्खा है कि आपके पास एक भूत है जो आपके वस में है सो मुझ पर अनुग्रह करके उसे दे दीजिये। यह सुन महात्मा ने उस भूत को बुलाया और कहा कि तुम इन सेठजी के यहाँ जाओ इस पर भूत ने कहा—" कि स्वामिन् मैं चला तो जाऊँगा परन्तु एक शर्त यह है कि इनको मेरे लिये हर वक्त काम बताना पड़ेगा और जब न बतावेंगे तभी मैं इन को दुखी करूंगा।,, यह सुन सेठजी ने कहा—" कि हमारे यहाँ बहुत काम हैं तुम चलो" भूत सेठजी के साथ घर आया और भारी से भारी काम को तुरन्त ही कर देता कुछ ही समय में सेठजी के सब काम कर दिये तो अब सेठ जी पर कुछ काम ही न रहा बेचारे अच्छे संकट में फंसे दिन रात दुखी रहने लगे। जब सब काम बात गये तो भूत बोला लालाजी कुछ और काम है तब सेठ जी ने कहा कुछ नहीं इतना सुनते ही भूत मारने दौड़ा सेठजी भागते २ महात्मा जी के समीप पहुंचे और बोले—"कि रक्षा करो महाराज रक्षा करो आपका भूत मारने को दौड़ता चला आता है। यह सुन महात्मा जी को दया आई और उसको एक उपाय बतलाया कि अपने घर के पास एक लोहे का खम्भ गढ़वा लीजिये जब काम न हुआ करे तभी भूत से कह देना कि इस पर चढ़, फिर कहना कि उतर, मतलब यह है कि उसको उसी पर चढ़ने उतरने की आज्ञा देदेना। सेठजी ने ऐसा ही किया अब भूत घबड़ाने

लगा, थोड़े ही दिनों में वह भूत सेठजी के बस में हो गया । इसी प्रकार यह मन भूत है इसको भी सदगुरु के उपदेशानुसार भगवान के गुणानुवाद रूपी खम्भ पर चढ़ाते रहना चाहिये और किसी मार्ग में इसे न जाने दो बस यह कुछ ही दिन में भूत की तरह अपने बस में हो जायगा ।

———✦———
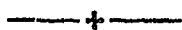
नं० ९१ बुरे की खोज

एक महात्मा के पास दो मनुष्य कुछ धर्म शिक्षा लेने के लिये गये । तो महात्मा जी ने एक से तो यह कहा कि तुम संसार की सबसे बुरी चीज ढूढ़ कर लाओ और दूसरे से यह कहा कि तुम इस कबूतर को ले जाकर ऐसी जगह मार लाओ जहाँ पर कोई दूसरा न हो यह सुन कर दोनों चले एक ने एक झाड़ी की ओट में कबूतर को मार दिया और महात्मा जी के पास ले आया । साधू ने कहा तुमने कहाँ पर मारा था । वह बोला एक झाड़ी की ओट में, वहाँ पर कोई न था । यह सुन महात्मा ने कहा कि,—

दो०—पापी समझत पाप करि, काहू देख्यौ नाहिं ।
पै सुर और निज आत्मा, निशदिन देखत जाहिं ॥

बस तुमको यही शिक्षा है । साधू ने शिक्षाधिकारी न समझ कर लौटा दिया । अब दूसरा जो बुरे की खोज में

था बहुत ही घूमा परन्तु कुछ ही बुरा न मिला तब अन्त में पाखाना (विष्टा) को हाथ पर लेना चाहा त्योंही उसमें अग्नि प्रगट हो गई और वह मैला कहने लगा कि मूर्ख तूने मुझे बुरा समझ कर उठाना चाहा अरे अज्ञान मैं तो अन्न देव था। किन्तु तुम जैसे की संगति से मेरा यह दुष्परिणाम हुआ। अर्थात् तुम्हारे मुख का संग किया जिससे मुझे भी मैला होना पड़ा यह सुन कर वह लज्जित हो महात्माजी के पास आया और दोनों हाथ जोड़ कर कहने लगा कि—

दोहा—बुरा जो देखन को चला, बुरा न दीखा कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझसा बुरा न कोय॥

महात्मा जी ने यह सुन कर उसे ही अपना शिष्य बना कर धर्म शिक्षा दी।

—+—
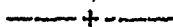
नं० ६२ देह होते हुए विदेह क्यों

एक दिन महाराज जनक जी से उनके मंत्री ने पूछा कि आपको देह होते हुए विदेह क्यों बोलते हैं। राजा ने कहा कि इसका उत्तर फिर कभी दे दूंगा। एक दिन राजाने नगर में यह घोषणा करादी कि कल ४ बजे मंत्री को किसी अपराध पर फाँसी दी जायगी। दूसरे दिन राजा ने छत्तीसों व्यंजन तैयार कराये किन्तु नमक किसीमें न डलवाया और दो बजे के करीब मंत्री जी को बुलाकर भोजन कराया और पीछे पूछा—कि

कहिये मंत्री जी भोजन में नमक कैसा रहा" ? मंत्री ने कहा—
"महाराज ! मुझे इस शोक में कि दो घंटे बाद फाँसी दी जायगी
देह की सुध नहीं है अर्थात् विदेह होरहा हूं मुझे यह ज्ञात नहीं
कि उसमें नमक था या नहीं।" राजा यह सुन हंसकर बोले कि
बस तुम्हारे प्रश्न का उत्तर मिल गया। जिस तरह आप अपने
जीवन का दो घंटा तक रहने का भरोसा पाकर भी दो घंटा
विदेह रहे वैसे ही मैं अपनी जिन्दगी का एक क्षण का भरोसा
न करके हमेशा विदेह रहता हूं।

नं० ९३ चोर की दाढी में तिनका।

किसी कस्वा बस्ती में चोरी हो गई। बस्ती के मुखिया
और नम्बरदार आदि ने थाने रिपोर्ट में की। थानेदार साहब
ने कई दिन आकर तहकीकात की किन्तु चोर का पता न चला
तब आखिर में थानेदार साहब ने बस्ती के सब मनुष्यों को
एकत्रित किया और कहा—कि "चोर की दाढ़ी में तिनका" यह
सुन और तो सब मनुष्य खड़े रहे किन्तु जिसने चोरी की थी।
विचारने लगा कि शायद मेरी दाढ़ी में तो तिनका न हो यह
सोच अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरा। थानेदार ने तुरन्त ही उसे
पकड़ लिया और सजा करादी। चोर में साहस ही कितना
होता है। यदि कोई चोर के सामने किसी चोरी की हालत

वर्णन करे तो वह चोर उसे अपने प्रति समझ कर उससे लड़ने तैयार हो जाता है।

———०———

नं० ९४ झूंठ सांच का अन्तर चार अंगुल है

किसी गांव में एक कत्ल का झगड़ा हो गया था। उसमें एक मनुष्य ने अवसर पाकर अपने वैरी का नाम ले दिया कि फलाने ने इसको कत्ल कर दिया है। वह बेचारा सज्जन पुरुष था। सुनते ही घबड़ा गया तब नगर के कुछ मनुष्यों ने कहा कि, घबड़ाते क्यों हो सांच को आंच कहीं नहीं है। अन्त में हाकिम ने आकर उसको पकड़ लिया और वह जो नाम ले आया था गवाही में रहा। जब मुकद्दमा हुआ तो उस दुष्ट ने उसके विपरीति गवाही दे दी। तब उस निरपराधी के वकील ने उससे पूछा कि तुमने अपनी आंखों से देखा झूंठा के पैर ही कितने होते हैं वकील की डाट को सुनकर बोला कि नहीं तो साहब मैंने तो इसी का हल्ला सुना था। यह सुन वकील ने हाकिम से कहा—कि देखिये हजूर झूंठ और सांच में चार अंगुल का अन्तर है। जैसे कि आंखों से देखा हुआ सत्य माना जाता है और कानों से सुना हुआ झूंठा माना जाता है अब आप आंख से कान तक नाप कर देख लीजिये चार अंगुल का अन्तर है। यह सुन हाकिम बहुत प्रसन्न हुआ और उस निरपराध व्यक्ति को छोड़ कर उस झूठे को सजा दी।

अतः सुनी हुई बात पर कभी विश्वास न करना चाहिये।

नं० ९५ विवेक वैराग्य के बिना ज्ञानवान भी शोभा नहीं पाता है।

उत्तराखंड में एक दयालु राजा अपना रूप छिपा कर किसानों व मजदूरों की हालत देखने के लिये रात्रि को नगर में घूमता था। जिसके दुख का परिचय उसे हो जाता राजा तन, मन और धन से उसके दुख को दूर करता था। एक दिन राजा इसी कार्य के कारण अपने नगर में निकला, उस दिन घटाटोप अंधेरा छाया हुआ था और आकाश में बिजली चमकती थी। राजा साहब एक घर पर खड़े २ कुछ बातें सुन रहे थे। बात करने वाले बड़े कंगाल थे नित्य प्रति मजदूरी से अपना पेट पालते थे उस दिन उनको कहीं मजदूरी भी न मिली थी। जब उनकी दृष्टि घर के द्वार पर गई तो चोर खड़ा हुआ मालूम पड़ा वे तुरन्त ही द्वार पर आये और राजा साहब को मारने लगे। यह हल्ला सुन कर पड़ौस के कुछ आदमी चिराग लेकर आये तो वह चोर न निकला किन्तु वे तो राजा साहब थे। अब वे बेचारे थर थर काँपने लगे और राजा साहब अपने घर चले गये। यद्यपि ये राजा ही थे तथापि छत्र चामरादिक के न होने से इनकी यह गति हुई, ऐसे ही ज्ञान के छत्र चामरादिक विवेक

और वैराग्य है। इसी कारण ज्ञानवान् इनके बिना शोभाहीन हैं। और वे भी दुर्वचन रूपी मार खाते फिरते हैं अस्तु ज्ञानवान को वैराग्य युक्त होना चाहिये।

नं० ९६ संसारमें पुरुष कौन और स्त्री कौन है

एक राजा के कोई सन्तान न थी। वह दिन रात इसी चिन्ताग्नि में जलता रहता था। एक दिन ईश्वर कृपा से उसकी स्त्री के गर्भ से लड़की उत्पन्न हुई, वह उसे देख कर अत्यन्त हर्षित रहता था। लड़की बड़ी होने पर भी नंगी रहने लगी उसके माता पिता ने इस कुटेव को छुड़ाने के लिए बहुत से प्रयत्न किये किन्तु उनका कोई फल न निकला।

"एक दिन एक महात्मा जी राजा के घर आए" उनको देखते ही उस लड़की ने कपड़ा पहिन लिए यह देख कर माता पिता ने पूछा कि बेटी तुमने हमारे कहने से तो कभी कपड़े नहीं पहिने आज इनके देखते ही क्यों पहिन लिए हैं।" यह सुन कर पुत्री ने कहा—"कि स्त्री को पुरुष से लाज करनी चाहिये न कि स्त्री से स्त्री को तुम पुरुष होते हुए भी स्त्री के समान हो क्योंकि इन्द्रियाँ ही जिसके बस में नहीं हैं वह स्त्री ही के समान है। "किन्तु ये महात्मा इन्द्रिय जीत हैं इसलिये मेरा इनसे लाज करना उचित था। और इन्द्रिय जीत बिना वैराग्य के नहीं हो सकता है। और जो मनुष्य

स्त्री के वस में हैं वह भी स्त्री संख्या में गणना करने योग्य है । ये राजा भी अपनी स्त्री के वस में होकर कुछ अन्याय कर गये थे इस कारण और भी पुत्री ने उनसे स्त्री की समता दी थी ।

—०—ऽऽ—०—

नं० ६७ पथिकारत

महाभारत में एक छोटा सा इतिहास है कि एक ब्राह्मण कहीं विदेश को जाता था, रास्ता भूल कर वह एक घने वन में पहुंच गया । उस वन में मांसाहारी सिंहादिक बड़े ही भयानक जीव घोर गर्जना कर रहे थे । कहीं बड़े मस्त हाथी चिंघार रहे हैं और कहीं बड़े विषधर सर्प वन में घूम रहे हैं । वह देख कर ब्राह्मण बड़ा ही भयभीत हुआ और अपने प्राण रक्षा के साधन सोचने लगा । इतने ही में क्या देखता है कि एक पिशाचिनी सामने से हाथ में पाश लिये हुए आरही है । उस से बच कर ब्राह्मण वन में दूसरी ओर बढ़ा तो यह दृष्टि पड़ा कि पर्वतों के समान पाँच शिरों वाले सर्प घूम रहे हैं । जब उनसे भी बच कर (अर्थात् उस रस्ता को त्याग कर) दूसरी ओर चला तो वन में एक कूआ दृष्टि पड़ा जो अन्धकार से भरा था और ऊपर से तृण करके ढका हुआ था । और उसके भीतर एक वेल लटक रही थी उसको ब्राह्मण ने अपने बचने का साधन समझ कर हाथ से पकड़ ली और नीचे को शिर करके लटक गया । जब थोड़ी देर बाद उसकी दृष्टि नीचे कुआ में गई तो वहाँ एक बड़ा सर्प बैठा दिखलाई दिया फिर

ऊपर को देखा तो एक सफेद और श्याम रंग का छै मुख का मस्त हाथी जिस बेल को द्विज पकड़ रहा है उसी बेल को खाता हुआ नजर आया और बीच में दो बड़े चूहे उस बेल को काट रहे हैं, अब द्विज का सिवाय ईश्वर के वहां दूसरा रक्षक नहीं है किन्तु उसी बेल पर मधुमक्खी बैठी हुई थीं जो मधु टपका रहीं थीं, वह मधु उस विप्र के मुख में पड़ता था। बस इसी मधु के स्वाद में ब्राह्मण अपने सब संकटों को भूल रहा है। यह तो दृष्टान्त है अब इसको दृष्टान्त में घटाते हैं। यह द्विज रूपी तो जीव है जो संसार रूपी सघन और भयंकर वन में भूल कर फिरता है और काम क्रोधादिक डरावने जीव इसमें घूम रहे हैं। और स्त्री रूपी पिशाचिनी मोग रूपी पाश को लेकर जीव के बांधने को चली आती है, इसमें गृहस्थाश्रम रूपी कूआ है और आयु रूपी बेल इसमें लटक रही है उसी को पकड़ कर यह जीव लटक रहा है, नीचे काल रूपी सर्प इसके खाने को बैठा है ऊपर दिन रात रूपी दो चूहे आयु रूपी बेल को काट रहे हैं और वर्ष रूपी हाथी आयु रूपी बेल को खा रहा है। इस के षट ऋतु ही छ मुख हैं और शुक्ल तथा कृष्ण पक्ष ही इसके दो रंग हैं। इस प्रकार के संकट में फंसा हुआ भी यह जीव आशा रूपी मधु मक्खी के मधु में अपने सब संकटों को भूला हुआ है। इसको वैराग्य धारण करके भगवान की शरण आना चाहिये, तभी इसका छुटकारा हो सकता है अन्यथा नहीं।

———०———

नं० ९८ परोपकार

परोपकार ही मनुष्य का भूषण है जो व्यक्ति इस भूषण को नहीं धारण करता वह शोभाहीन है । मनुष्य को तो विशेष ज्ञान है ही इसका तो कहना ही क्या है परन्तु इतर जीव भी परोपकार करते हैं ।

एक पंडित मार्ग चले जाते थे उन्होंने एक वन में जाकर देखा कि मूसों की एक बड़ी भारी कतार चली आती है उसमें एक चूहा अन्धा था, उसके मुख में एक घास का तृन पकड़ाकर उसी तृन को दूसरे मूसे ने अपने मुख में पकड़ रक्खा था । तिस के पीछे २ वह अन्धा मूसा भी चला जाता था अब विचारिये कि मूसा आदिक जानवरों में भी उपकार करने का ज्ञान है अब मतलब यह है कि जो मनुष्य शरीर पाकर उपकार से रहित है वह पशुओं से भी निकृष्ट श्रेणी में गिना जाने योग्य है क्योंकि मनुष्य शरीर तो प्रधानतः उपकार करने ही को उत्पन्न हुआ है ।

दोहा—बिरछा फलै न आम कौ, नदी न अचवै नीर ।
परोपकार के कारणे, संतन धरौ शरीर ॥
शेष शीश धारे धरा, कछु न आपनों काज ।
परहित परमारथि रथी, बाइक बनें न लाज ॥

——०—ऽऽ—०——

नं० ९९ परोपकार

एक नगर में एक वैश्य बड़ा धनाढ्य था। वह नित्य प्रति अपने धन को यज्ञों में खर्च करता था। धीरे २ जब उसका सब धन व्यतीत हो गया तो वह खाने तक को भी तंग आगया तब उसकी स्त्री ने कहा कि "नाथ आप किसी राजा के पास जाकर और अपनी एक यज्ञ का फल बेचकर धन लाओ जिस से कि हमारी जिन्दगी आराम से बसर होजाय।" बनिया ने स्त्री की बात मानकर चलने की तैयारी करदी तो उसकी स्त्री ने रास्ते को नौ रोटी बांध दी। बनियां उन्हें लेकर चला तो दिन के तीसरे पहर एक बन में कूआ के पास वृक्ष के नीचे सुस्ताने लगा तब देखता क्या है कि वृक्ष की कोटर में एक कुतिया ब्याही हुई पड़ी है जोकि तीन दिनकी भूखी है क्योंकि तीन दिन से कहीं बाहर नहीं जासकी। बनिया ने परोपकार की ओर ध्यान बढ़ा कर सब रोटी कुतिया को खिलादी आप भूखा ही रह गया। पुनः दूसरे दिन राजा के पास पहुंचा और यज्ञ के एक फल को बेचने के लिये कहा। राजा ने एक ज्योतिषी पंडित को बुलाकर कहा कि तुम इसकी सब यज्ञों का फल प्रश्न में देख कर जो सबसे बढ़ कर हो उसे हमें बतलाइये। बस हम उसे ही खरीद लेंगे। पंडित जी ने कहा कि इस ने मार्ग में एक कुतिया को रोटी खिला कर मय उसके बच्चों के जान बचाई है वही यज्ञ सब यज्ञों में श्रेय है। यदि उसी के फल

को ये बेचें तो खरीद लीजिये राजा ने बनियाँ से कहा, बनियां ने कहा—कि "इसको तो मैं नहीं बेच सकता हू, इसके अलावा और यज्ञ का फल खरीद लीजिये राजा ने और किसी यज्ञ के फल को न खरीद कर उसे कुछ धन देकर विदा कर दिया। अब देखिये कि परोपकार का कितना बड़ा फल है।

परोपकार. कर्त्तव्य: प्राणैरपि धनैरपि।
पराकारजं पुण्यं न स्यात्क्रतुशतैरपि ॥

अर्थ—धन से तथा प्राणों से परोपकार करना चाहिये क्योंकि परोपकार के बराबर सौ यज्ञ का भी पुण्य नहीं है।

परोपकार शून्यस्य धिङ्‌ मनुष्यस्य जीवितम्।
यावन्त: पशवस्तेषां चर्माप्युपकरिष्यति ॥

अर्थ—जो मनुष्य परोपकार से शून्य है उसके जीने को धिक्कार है। क्योंकि जितने पशु हैं उनके चर्म भी परोपकार करते हैं।

—o—

नं० १०० परोपकार

एक सेनापति अपनी सेना को अमरीका ले जारहा था। के सब मार्ग भूलकर एक सघन वन में पहुंच गये। और खाने का माल व्यतीत होगया, बेचारे भूखे प्यासे बेचैन हो गये। उनको भटकते हुए देख कर एक मनुष्य आया और उनके हाल से परिचित हुआ। तब वह उन सब को लेकर आगे बढ़ा तो

एक स्थान पर अन्नका ढेर मिला, तो उसने सेना से कहा कि भाई ये मेरा अन्न नहीं है। अतः तुम लोग इससे हाथ न लगाना यह सुनकर सेना ने ऐसा ही किया। पुनः आगे बढ़े तो फिर एक अन्न का ढेर मिला और वहीं पर एक निर्मल जलाशय था। वहीं पर उस मनुष्य ने कहा कि भाई ये अपना ही माल है जिस किसी को जितना चाहिये उतना ही इसमें से ले सकता है। यह सुन कर सब ने अपनी २ भूख भुझाई और जला शय में स्नान किये तथा घोड़ों को भी दाना खवाया और वहीं पर आराम से ठहरे। फिर दूसरे दिन मार्ग पूछ कर चले गये। बस इसी का नाम परोपकार है। जो मनुष्य किसी का निष्प्रयोजन कार्य करता है इसी को उपकार कहते हैं।
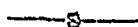
नं० १०१ परोपकार ही नरदेह का भूषण है

जिस समय पाँडव परीक्षित को राज्याधिकारी बनाकर आप द्रोपदी सहित हिमालय पर गलने जा रहे थे उस समय, धर्मराज अपने पुत्र युधिष्ठिर की धर्म परीक्षा लेने के लिये श्वान का रूप धारण कर महा व्याकुल हो उनके आगे फिरने लगे। श्वान के कान में कीड़ा पड़ रहे थे। धर्मराज युधिष्ठिर को देखते ही दया आगई और कान को पकड़ कर एक तिनका से कीड़ा निकालने लगे। ज्योंहीं एक कीड़ा निकाला त्यों वही

विचार उत्पन्न हुआ कि कीड़ों को पृथ्वी पर डालता हूं तो अनेक जीव हत्या का दोष लगेगा। और यदि नहीं निकलता हूं तो मेरा धर्म जाता है यह विचार कर अपनी जंघा फाड़ डाली और श्वान के कर्णा कीड़ों को उसमें रखने लगे ऐसा करने से दोनों दोषों से बच गये। ये भी तो मनुष्य ही थे किन्तु परोपकार को कितना भारी धर्म समझते थे। इसी से तो परोपकार को नर देही का भूषण कहा है जो जन इसको धारण करता है वह शोभा पाता है।

धन्य है ऐसे पूर्व परोपकारी पुरुषों को और उनके जननी जनक को जिन्होंने कि ऐसे सुपुत्रों को पाया ॥

नं १०२ संगठन (मेल)

एक नगर में एक काश्तकार के दस पुत्र थे। जब उस काश्तकार के शिर में काल नरेश ने सफेद पुच्छ के बाणवेध दिये अर्थात् बाल सफेद पड़ गये तब एक दिन काश्तकार ने अपने दसों पुत्रों को बुलाया और उन्हें कच्चे सूत का धागा तोड़ने को पृथक २ दिया, तो सब ने उस धागे को तोड़ दिया। फिर कई धागों की एकत्रित की हुई एक रस्सी दी और सब से तुड़वाई परन्तु उसे कोई न तोड़ सका। फिर सब के सब एक साथ लगाये तब भी वह रस्सी न टूटी। तब उस काश्तकार

ने कहा कि प्रिय पुत्रो मैंने तुमको यह शिक्षा दी है। जैसे तुमने एक २ धागे को अल्प समय में ही तोड़ दिया। और बहुत से धागों को न तोड़ सके बस इसी प्रकार यदि तुम फूट से रहोगे तो कच्चे धागे की तरह टूट कर दुख भोगोगे, और यदि सब मेल से रहे तो रस्सी के समान मजबूत हो जाओगे। अतः मेल से रहना बाप की यह बात पुत्रों ने स्वीकार करली और उसी तरह मेल से रहे। बस इसीलिये हमें भी संगठन की आवश्यकता है।

—·—o—·—
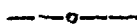
नं० १०३ संगठन से लाभ।

हमको सँगठन की आवश्यकता क्यों है। इसके तो कई कारण हैं परन्तु दो एक यहाँ बताया जायगा। पहिला तो स्वतंत्रतादायक है और दूसरे संगठन से आपत्ति काल सहज में ही व्यतीत हो जाता है। किसी गाँव में अकस्मात् अग्नि लग गई उस दिन पवन भी तीव्र गति से बह रहा था। इस कारण अग्नी सारे गाँव में फैल गई। सब मनुष्य अपने २ पशुओं को लेकर भाग गये। परन्तु वेचारे दो मनुष्य एक अन्धा और एक लंगड़ा रह गया। वे बेचारे घबड़ा गये, तब उन्होंने आपस में सलाह की कि भाई बिना परस्पर मेल के हमारे तुम्हारे बचने का कोई साधन नहीं है, अस्तु ऐसा करो कि दोनों पार हो जांय,

तब लंगड़े ने अन्धे के कन्धे पर सवार हो और उसे मार्ग बतलाया इस साधन से दोनो के प्राण बच गये नहीं तो वहीं पर जल मरते क्योंकि,लंगड़ा भाग नहीं सकता था, और अन्धा भी न, दीखने के कारण भाग नहीं सकता था । किन्तु संगठन ने उन दोनों के प्राण बचा दिये ।

नं० १०४ परस्पर की फूट

किसी जंगल में चार भैंसा एक साथ पास २ ही चरा करते थे। उनमें इतना मेल था कि जंगली जानवर की यह हिम्मत न थी जो उनकी ओर आंख उठा कर देखे । परन्तु एक दिन उनमें परस्पर फूट होगई और चारों प्रथक २ चरने को चले गये उसी दिन उस वन में एक सिंह आगया। जिसने प्रथक २ चरते हुए उन चारों भैंसों को मारडाला । इसी से तो कहा है कि फूट का नतीजा बुरा होता है । इसी प्रकार जय-चन्द और पृथ्वीराज की फूट ने आज भारत को गारत करा दियो ।

॥ भावार्थ ॥

बस इसी प्रकार यह जीव जब तक अपने साथी, साहस धर्म, विचार, सुचरित्र, शीलता, और दया आदिकों से मेल रखता है तब तक तो आनन्द से रहता है और जब इनका संग छोड़ देता है तब काम, क्रोध और लोभादि चारों द्वारा सताया जाता है । अस्तु हम सबको वर्तमान दशा में संगठन

की सर्व प्रथम और महान आवश्यकता है।

—०-SS-०—

नं० १०५ आज कल की सहधर्मिणी

किसी नगर में एक किसान रहता था। उसकी स्त्री बड़ी चंचल थी एक दिन प्रसंग चलने पर किसान ने कहा कि मैंने कथा में सुना है कि वैरी, बघुआ, चटोर स्त्री, भूखा मनुष्य और एक साला ये मीठे बोल २ कर दगा से मारते हैं अत इनकी कभी परतीत न करनी चाहिये। यह सुन कर स्त्री ने कहा कि आप सबको एक समान न समझें मैं प्रण करके कहती हूं कि जिस दिन आप प्राण त्यागोगे उसी दिन मैं भी त्याग दूंगी यह सुन कर वह किसान प्रसन्न हो चला गया।

एक दिन किसान परीक्षा लेने के लिये प्राणायाम चढ़ा कर घर लेट गया और अपने पैर किवाड़ों से अड़ा लिये। कुछ देर बाद स्त्री ने उन्हें बहुतेरा जगाया परन्तु वह न जगा तब उस ने उसे मरा समझ कर विचारा कि आज मुझे तमाम दिन रोना पड़ेगा और खाने को कुछ मिलेगा नहीं, इस कारण कुछ भोजन पका लेना चाहिये। जिसे पाकर विलाप करूंगी। इस प्रकार विचार कर खीर पकाई और पूआ पकाये। अब जल्दी में खीर को तो भक्षण कर लिया और पूआ फिर के लिए रख छोड़े।

अब उसने रोना पीटना शुरू किया आवाज सुन कर परौस के मनुष्य आगये और पैरों को हटाने लगे परन्तु वे पैर

किवाड़ों से अलग न टूटे तो पड़ोसियों ने कहा कि किवाड़ों को तोड़ डालो ताकि पैर हट जांय। यह सुन कर स्त्री ने कहा कि मेरी इन किवाड़ों को फिर कौन बनावेगा इस कारण पति ही के पैरों को काट दीजिये। यह सुन कर पति ने पैर ढीले कर दिये जो द्वितीय बार हटाने से हट गये। फिर उसकी स्त्री ने कहा कि—

सांईं स्वर्ग पधारिये कछु मोह ते भक्खौ।

यह सुन कर पड़े हुई किसान ने कहा कि—

खीरि लुपालुप खाइ लई, नेंक पूछन में ते चक्खौ॥

यह कह कर उसे अत्यन्त कड़ी सजा दी और सदैव को त्याग दी बस भारत में अधिकतर ऐसी स्त्रियों की संख्या अधिक है और दिन २ बढ़ती ही जाती है।

———०———
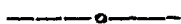
नं० १०६ दो घड़ी की माया

ऋषि मार्कण्डेयजी ने तप करके श्री भगवान से यह वरदान मांगा था कि मैं प्रलय का कौतिक देखूं यह सुन भगवान ने एवमस्तु कह दिया।

एक दिन ऋषि मार्कण्डेयजी सन्ध्या करने बैठे थे कि ईश्वर ने दो घड़ी की माया उत्पन्न की ऋषि ने सन्ध्या करतेर देखा कि समुद्र उमड़ा चला आता है। क्षण भर में जल ही जल हो गया ऋषि तैरने लगे और उसमें अक्षयवट को देख कर

उस पर चढ़ गये वहाँ उस दोंने में एक बालक को देखा और उसकी स्वास से उसके उदर में प्रवेश कर गये। वहाँ भी एक ऐसा ही संसार देखा और अपना भी आश्रम देखा वहाँ पर कुछ दिन रहे। फिर स्वांस के साथ बाहर आये तो अपने को नदी तट पर स्थित देखा। यह देख विस्मय में आगये किन्तु पहिले वरदान का स्मरण कर चुप रह गये और अन्त में दो घड़ी की माया विदित हुई।

बस इस संसार में न कोई अपना है न कोई अनदान है केवल दो घड़ी कीमाया है जिसने सब जीवों को भुला रक्खा हैं। अस्तु मायापति का ही नित्य प्रति गुणानुवाद करना चाहिये जिससे इस अपार संसार से पार हो जायें।

नं० १०७ पूत सपूत कहा धन संचिय

किसी गांव में रत्नाकर नाम का एक वैश्य रहता था। वह बडा ही सदाचारी, परिश्रमी और व्यापार प्रवीन था। व्यापार में तो लक्ष्मी का निवास बताते ही हैं अत. लाला रत्नाकार जी भी बड़े धनाढ्य हो गये। और दूर २ देशों में उनका नाम विख्यात हो गया। लालाजी के एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम देवदत्त था। देवदत्त के बालकपन ही से निराले ढंग थे। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात, वाली कहावत इन पर पूर्णतया घटित होती थी। एक दिन रत्नाकर

जी कथा में यह सुन आये थे कि, पूत सपूत कहा धन संचिय, उन्होंने इसी शिक्षा को ग्रहण कर अपने सम्पूर्ण धन को दान में लुटाया और अनेक धार्मिककामों में लगा दिया। नगर के बहुत से मनुष्यों ने तथा कुटम्बी जनों ने उनसे कहा कि, लाला जी अपने प्रिय पुत्र देवदत्त का क्या आपको जरा भी ख्याल नहीं है। लालाजी ने उनकी एक न मानी, कुछ दिन पश्चात आपका देहान्त हो गया। उस समय आपका कमाया हुआ द्रव्य घर में किंचित भी न था। देवदत्त कुछ तो पढ़ लिये थे, अब वेचारे पिता जी के मरणोपरान्त लाचार होगये। किन्तु उन्हों ने साहस से काम किया वेचारे रात्रि में तो नौकरी करते और दिन में पढ़ते थे। कुछ दिन बाद आप पढ़ लिख गये और व्यापार कुशल हो गये तो फिर बहुत सा द्रव्य पैदा किया और एक धनाढ्य महाजन हो गये और बहुत सा धन धार्मिक कामों में भी लगा दिया।

इसी से तो कहा है कि "पूत सपूत कहा धन संचिय" जो पुत्र सुपुत्र है वह तो स्वयं ही धन कमा कर अपना जीवन आनन्द से व्यतीत कर सकता है।

———

नं० १०८ पूत कपूत कहा धन संचिय

इन्हीं देवदत्त जी के प्यारेलाल नामक पुत्र हुए। इनका चाल चलन बालकपन ही से कुछ और था। इन पर, (पूत के

पाँव पालने ही में दीखते हैं) वाली कहावत घटित होती थी। बालअवस्था ही से इनकी संगति खराब थी, कालवश देवदत्त जी का मरण हो गया तो घर का सारा भार प्यारेलाल जी के शिर पड़ा। इनके पृथक २ कामों के करने वाले सैकड़ों नौकर थे प्यारेलाल को कुसंग के कारण दो चार कुटेव पड़ गई थीं। एक तो व्यभिचार (पर स्त्री गमन) दूसरा शराब पीना, तीसरे अफीम आदि नशीले पदार्थों का सेवन, चौथे जूआ खेलना, जब तक वह दिन में इन कामों को न कर लेता तब तक विश्राम न लेता था। कुछ दिन बाद कुटेवों की वृद्धि से धन का अधि-कांश भाग तो जूये में नष्ट हो गया, कुछ व्यभिचार और नशीले पदार्थों में व्यतीत हुआ, प्यारेलाल शराब पीकर मस्त पड़े रहते तो नौकरों ने यह जान कर कि "हमारा स्वामी तो पागल है" धन हरण कर लिया। अन्त में इन कुटेवों ने प्यारेलाल को रोटियों को भी मुहताज कर दिया, इसी से तो कहा है कि "पूत कपूत कहा धन संचिय,, क्योंकि वह सब धन को थोड़े ही काल में नष्ट कर डालता है।

——❁——
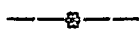
नं० १०९ ईश्वर जो कुछ करता है अच्छा ही करता है।

एक राजा अपने मंत्री सहित आखेट को गये। बन में

दैवयोग से घोड़े से गिर कर राजा के हाथ का अंगूठा टूट गया। जब नगर में पहुंचे तो सब मनुष्य तो शोक करने लगे किन्तु मंत्रीजी यही कहते कि ईश्वर जो कुछ करता है अच्छा ही करता है। राजा को बार २ यही सुन कर क्रोध आ गया और कहा कि हमारा तो अगूंठा टूट गया और आप कहते हैं कि ईश्वर जो कुछ करता है सो अच्छा ही करता है। इसमें ईश्वर ने क्या अच्छा किया। मंत्री ने हंसकर कहा कि महाराजाधिराज कुछ न कुछ अच्छा ही किया होगा यह सुन राजा का क्रोध और बढ़ गया और मंत्री को राज्य से बाहर निकलवा दिया।

एक दिन राजा फिर घोड़े पर सवार होकर आखेट को गए वन में घूमते २ सन्ध्या हो गई। वहीं पर वन में एक देवी का मन्दिर था। राजा घोड़ा को बाँध कर उसमें लेट गए जब कुछ रात्री व्यतीत हुई तो कुछ चोर वहां पर आए और राजा को सोता देख कर बड़े प्रसन्न हुए क्योंकि उन्हें बलिदान करना था। राजा को जगाया और तलवार लेकर शिर काटना चाहा तभी उनमें से एक ने कहा कि भाई देवी अप्रसन्न हो जायगी क्योंकि हम तुम अंगहीन की बलि दे रहे हैं इसके एक अंगूठा नहीं है। यह देख कर चोरों ने राजा को छोड़ दिया फिर राजा ने नगर में आते ही मन्त्री को बुलाया और अपना अपराध क्षमा कराया। तब मंत्री जी ने सब को समझाया कि यदि राजा साहब का अगूंठा टूटा न होता तो बलि दे दिये जाते परन्तु उस दिन अगूंठा टूट गया सो ईश्वर

ने अच्छा ही किया। और आपने मुझको राज्य से निकाला, भी ईश्वर ने अच्छा ही किया क्योंकि यदि आप मुझे न निका. तो आपके साथ मैं भी आखेट को जाता तो मैं अङ्गहीन न था। अतः मेरी बलि चढ़ा देते, अस्तु ईश्वर ने यह भी अच्छा ही किया। राजा यह सुन कर प्रसन्नचित्त हो गया।

भेंचो

आदि

नं० ११० पाप का बाप लोभ

लोभ से पाप की उत्पत्ति हुई है इसी हेतु लोभ को प का बाप बतलाया गया है। जैसे कि एक ब्राह्मण और सुनार मित्रता थी। ब्राह्मण बड़ा ही शील स्वभाव और सर्व गु सम्पन्न था। उसकी स्त्री भी पतिव्रता थी। परन्तु वह ब्राह्म धनहीन था, किन्तु सन्तोष को ही अपना परम धन मान ए जीवन व्यतीत करता था। और सुनार धनाढ्य था, कि अविवाहित था।

एक दिन ब्राह्मण तो अर्थ चेष्टा में परदेश गये अपनी स्त्री को सुनार मित्र के यहाँ छोड़ गये। एक दिन सुनार ने ब्राह्मणी को अपने स्नेह जाल में फसाना चाहा कि वह सुनार की दुर्जनता से परिचित थी। पहिले ही से वो वैश्या गामी थी। ब्राह्मणी ने कहा कि अब मैं तुम्हारे घर कदा नहीं आ सकती हूं। यह सुन सुनार ने कहा कि दो मुद